अप्रैल-जून, 2012
ISSN:2320-7736

सत्यमेव जयते

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंक: 81

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक 81
अप्रैल–जून, 2012

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    श्री अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : www.cstt.nic.in
कापीराइट © 2012
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
E-mail : vgs.cstt@gmail.com

अध्यक्ष की कलम से .....

आयोग की त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान गरिमा सिंधु ' का अंक 81 पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा है। इस पत्रिका के माध्यम से शब्दावली आयोग ने अपनी निर्मित शब्दावली का प्रचार–प्रसार किया है; साथ ही विज्ञान को हिंदी माध्यम से अपने पाठकों तक संप्रेषित करते हुए विज्ञान–प्रसार जैसा महत्वपूर्ण कार्य किया है। वस्तुतः आधुनिक विज्ञान ने प्रारंभ से ही हमारे देश में अंग्रेजी माध्यम से ही अपने पैर जमाए जिससे प्रारंभ से ही हिंदी प्रदेश के विद्यार्थियों,शिक्षकों एवं प्रयोक्ताओं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। यही स्थिति देश के अनेक भागों में आज भी वैसी ही है। वर्तमान में यह आवश्यक हो गया है कि अंग्रेजी माध्यम के साथ हिंदी माध्यम में विज्ञान के लेखन को सामान्य जन तक पहुँचाया जाना चाहिए।

प्रस्तुत अंक में रसायनविज्ञान, स्वास्थ्यविज्ञान, भौतिकी एवं कृषिविज्ञान, आदि विषयों से संबंधित ज्ञानवर्धक तथा शोधपरक लेख सम्मिलित किए गए हैं। डॉ. दिनेश मणि के लेख में विज्ञान में रेडियो समस्थानिकों के उपयोग के महत्व को उजागर किया गया है। डॉ. भारद्वाज के लेख में आबू की सौंफ की विशिष्टताओं का उल्लेख किया गया है। वस्त्र उद्योग से जुड़ी तकनीकी विधा के अंतर्गत वस्त्रों को रंगने तथा रंजकों के परीक्षण के बारे में पाठकों को परिचित कराया गया है।

जैविक खेती के संबंध में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के राष्ट्रीय सलाहकार, डॉ. शंकरलाल ने बहुमूल्य सूचनाएँ प्रस्तुत की हैं। रसायनविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में डॉ. एन. के. बोहरा ने आवर्त सारणी एवं नवीन तत्वों की खोज पर अपना लेख प्रस्तुत किया है। इसके अलावा स्वास्थ्यविज्ञान से संबंधित दो महत्वपूर्ण लेख इस अंक में समाविष्ट हैं। आयोडीन एवं स्वास्थ्य, कृषि जैवविविधिता, आदि लेखों का इस अंक में समावेश कर आयोग ने विज्ञान की अमूल्य जानकारी अपने सुधी पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि दो महान वैज्ञानिकों, वर्ष 1983 के भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता श्री सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर तथा 18वीं शताब्दी के महान रसायनज्ञ एन्टॉयन लारेन्ट लावाजिए के वैज्ञानिक शोधों पर आधारित लेख सम्मिलित कर पत्रिका को सूचनाप्रद बनाने का प्रयत्न किया गया है।

अंत में यह कहना चाहूँगा कि ' विज्ञान गरिमा सिंधु ' के संपादक श्री अशोक सेलवटकर आयोग में तकनीकी विषयों की शब्दावलियों एवं परिभाषा कोशों तथा पाठमालाओं के निर्माण में निरंतर कार्यरत होने के बावजूद निष्ठापूर्वक इस पत्रिका को निकाल रहे हैं जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

(प्रो. केशरी लाल वर्मा)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

नई दिल्ली

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक-81, अप्रैल–जून, 2012

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

सहयोग
श्री देवेंद्र दत्त
नौटियाल

प्रकाशन-मुद्रण व्यवस्था
डा. धर्मेन्द्र कुमार, स.नि.
श्रीं आलोक वाही
कलाकार

श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
श्री बी. के. सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
संपादक
"विज्ञान गरिमा सिंधु"
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम **पृ. सं.**

1.	रेडियो समस्थानिकों का बढ़ता प्रयोग	*डॉ. दिनेश मणि*	1
2.	आबू की विशिष्ट सौंफ	*डॉ. राजू लाल भारद्वाज*	6
3.	रंजकों का परीक्षण	*श्री श्याम सुंदर बैरवा*	10
4.	जैविक खेती : क्या है और इसे क्यों व कैसे अपनाएं?	*डॉ. शंकर लाल एवं श्री धर्मेन्द्र कुमार*	18
5.	आवर्त सारणी एवं नवीन तत्वों की खोज	*डॉ. एन. के. बोहरा*	24
6.	मिर्गी रोग : अंधविश्वास हटाएं, जागरूकता बढ़ाएं	*डॉ. सोनल अग्रवाल*	27
7.	भोजन में प्रोटीन की महत्ता	*डॉ. जे. एल. अग्रवाल*	30
8.	वन हमारे जीवन रक्षक	*डॉ. ए. के. चतुर्वेदी*	35
9.	बदलती जलवायु में कृषि जैव–विविधता की महत्ता	*मोहन सिंह जांगड़ा*	38
10.	स्वास्थ्यवर्धक अंगूर	*डॉ. आर. एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राव*	42
11.	आयोडीन और स्वास्थ्य	*डॉ. ए. के. चतुर्वेदी*	44
12.	विज्ञान समाचार	*डॉ. विजय कुमार उपाध्याय*	46
13.	सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर	*जगनारायण*	49
14.	एन्टॉयन लारेन्ट लावोजिए : एक महान रसायनज्ञ	*सतीश चंद्र सक्सेना*	52
	लेखक–परिचय		55
	आयोग के प्रकाशन		56–58

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

रेडियो समस्थानिकों का बढ़ता प्रयोग

डॉ. दिनेश मणि

शायद ही आज कोई ऐसा क्षेत्र हो जिसमें रेडियो समस्थानिकों (रेडियो आइसोटोपों) का उपयोग न किया जा रहा हो। विश्व के अधिकांश बड़े अस्पतालों में इन रेडियो समस्थानिकों के द्वारा कैंसर, मस्तिष्क अर्बुद (ब्रेन ट्यूमर) इत्यादि की चिकित्सा सफलतापूर्वक की जा रही है। पौधों की वृद्धि और उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार के अध्ययन के लिए 'गामा गार्डन' बनाए जा रहे हैं। खाद्य परिरक्षण तथा सर्जिकल उपकरणों के निर्जर्मीकरण के लिए भी रेडियो समस्थानिक अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। अनेक उद्योगों में भी इन रेडियो समस्थानिकों का उपयोग किया जा रहा है।

निश्चित रूप से मानवता की अधिकांश सेवा विभिन्न तत्वों के रेडियोसक्रिय समस्थानिकों ने की है। रेडियोसक्रियता ने जैविकी, कार्यिकी, रसायन, भौतिकी, आयुर्विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि की समस्याओं का हल करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनमें से कुछ समस्याओं का हल, जो कि जीवन क्रियाओं से सीधे संबंधित है, बिना समस्थानिकों के उपयोग के कदाचित् प्राप्त नहीं होता।

रेडियोसक्रिय तत्वों तथा समस्थानिकों का एक विशेष गुण यह है कि इनके द्वारा द्रव्य के अदृश्य कणों तथा उनकी गति का पता सरलता से लगाया जा सकता है। इसकी सहायता से प्रत्येक अणु तथा परमाणु का मार्ग निश्चित रूप से ज्ञात किया जा सकता है तथा एक ही रासायनिक तत्व के विशिष्ट परमाणुओं को उसी तत्व के अन्य परमाणुओं से अलग पहचाना जा सकता है। रेडियोसक्रिय परमाणु चाहे जिस स्थान पर छिपे हों, उनका पता उनसे उत्सर्जित विकिरणों द्वारा चल जाता है।

विकिरण समस्थानिक जनस्वास्थ रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका उपयोग कैंसर के उपचार में विशेष रूप से किया जा रहा है। विभिन्न रोगों के आकलन तथा चिकित्सीय उत्पादों के निर्जर्मीकरण हेतु भी इनका प्रयोग किया जाता है।

विकिरण–औषधि ऐसे पदार्थ होते हैं जो कम अर्ध–आयु वाले उपर्युक्त विकिरण समस्थानिक (जो बीटा या गामा किरणें देते हैं) द्वारा चिह्नित रहते हैं। इन्हें कम मात्रा में रोगी के शरीर में रोग के आकलन हेतु प्रविष्ट किया जाता है। तत्पश्चात् उपकरणों द्वारा शरीर के अवयव के विस्तार, आकार और स्थान का पता लगा लेते हैं। इनके अनुप्रयोगों से यह भी पता लगा लेते हैं कि अवयव ठीक प्रकार से काम कर रहा है अथवा नहीं।

वस्तुतः मानव को जब यह जानकारी हुई कि बहुत–से तत्वों के परमाणुओं के नाभिक में से अलग–अलग तरह के विकिरण निकलते हैं और वह तत्व किसी दूसरे तत्व में परिवर्तित हो जाता है तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। एक तत्व से दूसरे तत्व में परिवर्तित होने की जानकारी ने मानव को विस्मित कर दिया जिसके परिणामस्वरूप तत्वांतरण की परिघटना का विकास हुआ। आज हमें रेडियोसक्रिय तत्वों के विघटन, अर्धआयु तथा उनसे निकलने वाले विकिरणों के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है।

रेडियो समस्थानिकों से उत्सर्जित विकिरणों का रासायनिक अभिक्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है और इनसे कई रासायनिक अभिक्रियाएं प्रेरित होती हैं। रेडियोसक्रिय तत्व मूल तथा रूप से अस्थायी होते हैं और वे विकिरण

उत्सर्जित करके निचले ऊर्जा–स्तर वाले स्थायी नाभिकों में परिवर्तित हो जाते हैं। ऊर्जा स्तरों के मध्य की ऊर्जा विकिरण की ऊर्जा के रूप में प्रकट होती है। किस तत्व में कौन सा विकिरण (ऐल्फा, बीटा अथवा गामा) उत्सर्जित होगा– इसका निर्णय रेडियोसक्रिय तत्व की नाभिकीय अवस्था पर निर्भर करता है। सभी विकिरण ऊर्जायुक्त होते हैं तथा अपने भार व ऊर्जा के आधार पर अलग–अलग गति से गतिमान होकर किसी माध्यम में अपनी ऊर्जा अंतरित करते हैं। ऐल्फा कण सबसे भारी और अधिक आवेशित होने के कारण किसी माध्यम के अणुओं (कुछ माइक्रोमीटर) से टकराकर बहुत कम दूरी चलकर ही अपनी ऊर्जा खो देते हैं। बीटा किरणें, ऐल्फा कणों की तुलना में तेजगति से थोड़ी और अधिक दूर चलकर (कुछ मिलीमीटर) तथा गामा किरणें अनावेशित होने के कारण तथा प्रकाश के वेग से चलकर सबसे अधिक दूरी तय करके अपनी ऊर्जा अंतरित करती है।

विकिरण, जीवित कोशिकाओं के लिए घातक है, अंतः इसका प्रयोग कैंसर के उपचार हेतु किया जाता है। आज विकिरणशील समस्थानिक बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। विगत कुछ वर्षों में नाभिकीय चिकित्सा विधाओं का आशातीत विकास हुआ है और इसकी सहायता से कार्यिकी (शरीर क्रिया विज्ञान) एवं अंगों के कार्य–कलाप का सूक्ष्म अध्ययन संभव हो गया है।

विकिरण से कैंसरग्रस्त कोशिकाओं (ट्यूमर) को नष्ट करने के अलावा इसका उपयोग दूसरे रोगों की चिकित्सा के लिए भी हो रहा है। शरीर के सिर्फ प्रभावित क्षेत्र को ही किरणित किया जाता है जिससे स्वस्थ कोशिकाओं को कोई नुकसान न पहुँचे। कोबाल्ट–60, इरीडियम–192 एवं गोल्ड–199 विकिरण स्रोतों ने विभिन्न प्रकार के कैंसर रोगों के उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस तकनीक में कम सक्रियता वाले स्रोत को सुई अथवा नलियों के रूप में रोगी के कैंसरग्रस्त अवयव के अंदर प्रविष्ट कर एक निश्चित अवधि के लिए विकिरण की आवश्यक मात्रा देने के लिए रख दिया जाता है। इनकी किरणों से कैंसरग्रस्त कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं।

विकिरणों के जीवाणुनाशक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए इनका उपयोग व्यापारिक स्तर पर चिकित्सीय उत्पादों के निर्जर्मीकरण हेतु हो रहा है। अत्यधिक भेदनशक्ति के कारण गामा किरणें बाहरी बक्से को भेदकर उसमें रखे पदार्थों के हर भाग में समान रूप से पहुँचकर उन्हें जीवाणुयुक्त कर देती हैं। इस विधि में ताप उत्पन्न नहीं होता। इस कारण से निम्न गलनांक वाले प्लास्टिक उत्पादों के निर्जर्मीकरण हेतु यह बहुत अच्छी विधि है। अन्य विधियों की तुलना में विकिरण विधि द्वारा जीवाणुओं को नष्ट करने में अधिक सफलता मिली है। इस विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि चिकित्सा उत्पादों एवं औषधियों के अंतिम रूप से बंद पैकेट, बक्सों को बिना खोले निर्जर्मीकृत किए जा सकते हैं।

विकिरणशील पदार्थ जब सीमित से अधिक मात्रा में मानव शरीर में पहुँचते हैं, तो वे हानिकारक सिद्ध होते हैं। अत्यधिक मात्रा में विकिरण से कैंसर हो सकता है। जैव पदार्थों में विकिरण संबंधी प्रभाव का अध्ययन कम डोज पर करना संभव नहीं होता। इसके लिए कम से कम 100 मिली सीवर्ट डोज जरूरी होती है। विकिरण प्रत्यक्ष रूप से शरीर की कोशिकाओं को आयनित कर जैव–रासायनिक तत्व प्रोटीन डी.एन.ए. आदि को नष्ट कर देता है तथा अप्रत्यक्ष रूप से शरीर में स्थित पानी से अभिक्रिया कर अत्यंत महत्वपूर्ण जैव–कणों को भी नष्ट कर देता है। डी.एन.ए. अणुओं के नुकसान से कैंसर होने का खतरा रहता है लेकिन ये अणु हर क्षण सैकड़ों की संख्या में नष्ट होते रहते हैं और खुद ही उनकी मरम्मत भी होती रहती है। अतः 1 सीवर्ट डोज एक मिनट में लेना खतरनाक हो सकता है जबकि उतनी ही डोज एक वर्ष में लेने से कोई नुकसान नहीं होता। ऐसा इसलिए संभव है कि विकिरण से नष्ट हुई कोशिकाओं को मरम्मत का समय मिल जाता है।

रेडियो औषधि विज्ञान में प्रयुक्त रेडियो समस्थानिकों की अर्धायु इतनी होनी चाहिए कि वह रोगी को देने के बाद आकलन के दौरान आवश्यक मात्रा में रेडियोसक्रिय रहे ताकि उत्सर्जित विकिरणों द्वारा अनुरेखन किया जा सके तथा उत्सर्जित विकिरणों की ऊर्जा कम से कम अर्थात् उतनी ही होनी चाहिए जितनी से उत्सर्जित

विकिरणों को विकिरणमापी उपकरणों द्वारा आसानी से मापा जा सके तथा इस दौरान रोगी को कम से कम विकिरण का सामना करना पड़े।

आजकल उद्योग जगत् में भी रेडियोसक्रिय तत्वों का इस्तेमाल विभिन्न प्रयोजनों के लिए किया जा रहा है। इन सब विधियों में रेडियोसक्रिय तत्व की मात्रा भी सीमित रखी जाती है जिससे वहां काम करने वाले व्यक्तियों को स्वीकृत डोज से ज्यादा विकिरण न मिले।

रेडियोसक्रियता के उपयोग में कुछ कठिनाइयां भी हैं, जैसे बीटा तथा गामा विकिरण उत्सर्जित करने वाले समस्थानिक प्रायः कम आयु वाले होते हैं जिसके कारण उनका उपयोग जल्दी करना आवश्यक होता है। अतः ऐसे विकिरणों युक्त रसायनों का अधिक समय तक भंडारण संभव नहीं है। साथ ही रेडियोसक्रिय रसायनों का निपटान भी आसान नहीं होता। अतः रेडियोसक्रिय प्रतिरक्षा आमापन विधिया खोजी गई हैं तथा उनका उपयोग भी ऐसे मापनों के लिए बढ़ता जा रहा है। प्रतिरक्षा विकिरण आमापन इस तरह अधिक सुविधाजनक विधियों से किए जा सकते हैं।

वास्तव में समस्थानिक किसी तत्व के वे विभिन्न रूप हैं जिनके नाभिक में प्रोटीन की एक ही संख्या होती है एवं नाभिक के बाहरी क्षेत्र में भी इलेक्ट्रॉन की संख्या समान होती है। इस प्रकार उनके गुणों में भी समानता होती है। उनकी असमानता उनके नाभिक में इलेक्ट्रॉनों की संख्या में विभिन्नता के कारण होती है। इस प्रकार उनके नाभिक के भार भिन्न होते हैं तथा उनका परमाणवीय भार भी भिन्न होता है। बहुत से तत्वों के समस्थानिकों से उत्पन्न किरणों द्वारा मिट्टी, पौधे, जंतुओं या अन्य स्थूल वस्तुओं में उपस्थित अन्य वस्तुओं की गतिविधि के अवलोकन को प्रदर्शित करने की क्षमता अनुरेखण कहलाती है तथा जो विधि इस हेतु अपनाई जाती है उसे अनुरेखण तकनीक कहते हैं।

इस नवीन तकनीक ने मनुष्य की निरीक्षण शक्ति, उन क्षेत्रों में भी अत्यधिक बढ़ा दी है जहाँ अब तक की सभी ज्ञात विधियां असफल रही हैं। ऐसे अनुसंधान कृषि में महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर पहुंचने में विशेष सहायक हुए हैं और यदि इनका उपयोग सर्वत्र होने लगे तो पैदावार अत्यधिक बढ़ाई जा सकती है। कृषि, प्रकृति के साथ इस प्रकार का जुआ है जिसमें किसान को अनेक अज्ञात उलझनों एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसके द्वारा अपनाई गई अनेक विधियां परंपराओं पर निर्भर करती हैं, न कि इसके वास्तविक ज्ञान पर। रेडियो समस्थानिक इन क्षेत्रों में मार्गदर्शन में बड़े सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

इनका सुंदर उपयोग उर्वरकों के प्रयोगों में होता है। इससे उपज का व्यय कम करने में सहायता मिलती है। इस दिशा में फॉस्फोरस–32 अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। फॉस्फेट उर्वरकों के रूप में इसका उपयोग होते ही यह शीघ्र बता देता है कि पौधे ने उर्वरक को किस भांति अपने भीतर लिया। स्वीडन के वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया है कि उर्वरक को मिट्टी की सतह पर डालते ही पौधों की जड़ें अविलंब इसे ग्रहण करना प्रारंभ कर देती हैं। अमरीकी वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि घास की पत्तियों पर डाले गए उर्वरक उनके द्वारा ग्रहण कर लिए जाते हैं। अतएव घास के मैदान को जोतने की आवश्यकता नहीं है। रूसी वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि फॉस्फोरस के वितरण पर बलुई मिट्टी विशेष प्रभाव नहीं डालती, किंतु मिट्टी को यदि ढीला कर दिया जाए तो वर्षा का जल इसको सरलता से बहा ले जाता है। कपास, तंबाकू, मक्का तथा चुंकदर पैदा करने वालों की बहुत बड़ी बचत इस अनुसंधान से यह हुई है कि इनके पौधे केवल उगने की प्रारंभिक अवस्था में ही उर्वरकों से फॉस्फोरस लेते हैं और बाद में डालने पर घुल कर निकल जाने का भय रहता है। इसके विपरीत आलू का पौधा बढ़ने की अंतिम अवस्था तक इससे लाभान्वित होता रहता है। अनुसंधानों द्वारा यह भी सिद्ध हुआ कि सिंचाई के जल के साथ मिलाकर फॉस्फोरिक अम्ल देने से उतना ही लाभ होता है जितना सूखा उर्वरक मिट्टी पर फैलाने से।

पौधों के लिए खनिज पदार्थों की अत्यंत आवश्यकता है, यद्यपि वे कम मात्रा में आवश्यक होते हैं। वे भूमि से किस प्रकार पौधों में प्रवेश करते हैं इसका सही ज्ञान रेडियोसक्रिय समस्थानिकों द्वारा हुआ है। इन अनुसंधानों से उनके प्रवेश मार्ग, प्रवेश गति, वनस्पति में उनके

वितरण तथा कोष द्वारा ग्रहण आदि संबंधी सारी क्रियाओं का ज्ञान हो जाता है। इन प्रयोगों में रेडियो कैल्सियम–45 का उपयोग हुआ है जिससे पौधों द्वारा कैल्सियम अवशोषण के प्रक्रम का बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त हुआ है। इन प्रयोगों में आयरन–55 और जिंक–55 द्वारा भी उपयोगी परिणाम प्राप्त हुए हैं। रेडियोसक्रिय तत्वों के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि फल बीजों का निर्माण होते समय उनमें फॉस्फोरस जमा होने लगता है। कुछ बीजों में फॉस्फोरस के साथ–मैग्नीशियम भी जमा होता है। ऐसी अवस्था में पेड़ को फॉस्फोरस और मैग्नीशियम की बहुत आवश्यकता होती है और यह तत्व उसको अधिक मात्रा में मिलना चाहिए।

पौधों की उपज बढ़ाने के लिए उर्वरक की आवश्यकता होती है यह सभी को ज्ञात है। परंतु मृदा में उर्वरक किस रूप में और किस समय मिलाए जाएं, इस प्रश्न का उत्तर देना सरल कार्य नहीं है। उदाहरण के लिए फॉस्फेट उर्वरक को सारी भूमि में बराबर डालना ठीक होगा या समानांतर रेखाओं में उन्हें ऊपर डाला जाए या कुछ गहराई तक पहुँचाया जाए? इन प्रश्नों का ठीक उत्तर संकेतक परमाणुओं द्वारा ही मिल सका है। हमें उनके द्वारा व्यापारिक उर्वरकों, जैविक खाद और हरी खाद तीनों के बारे में बहुमूल्य जानकारी प्राप्त हुई हैं। इस क्रिया का प्रयोग होने के पूर्व, उर्वरकों की उपयोगिता का अंदाज उपज द्वारा किया जाता था, परंतु उसमें वर्षा, ताप और रोग इन तीनों का प्रभाव भी शामिल होता था जिसके सही परिणाम पाने में कठिनाई होती थी।

इन प्रयोगों में सर्वप्रथम उर्वरक के साथ फॉस्फोरस आदि उपयोगी तत्वों के रेडियोसक्रिय समस्थानिक मिलाए जाते हैं जिनकी मात्रा बहुत कम होती है। इस प्रकार के चिह्नित उर्वरकों को प्रयोगिक भूखंड में डालकर पौधों या पेड़ों की वृद्धि देखी जाती है। जब पेड़ या पौधा पोषक तत्व अवशोषित करेगा, तभी उसके साथ–साथ उसका रेडियोसक्रिय समस्थानिक भी अवशोषित होगा। किसी स्थानविशेष में पोषक तत्व की उपस्थिति का संकेत मिला तो हम जान लेगें कि तने में पोषक तत्व आ गया है। जिस समय पत्ती या फल में पोषक तत्व प्रवेश करेगा उस समय उनके द्वारा विकिरण दिए जाने लगेंगे।

उर्वरक प्रयोगों द्वारा हमें यह जानकारी मिलती है कि पेड़–पौधे केवल जड़ से ही पोषक नहीं प्राप्त करते, अपितु वे उन्हें फल, पत्तियों, फूल, तना और शाखा द्वारा भी ग्रहण करते हैं। कुछ पौधों में देखा गया है कि उनकी पत्तियों को यदि पोषक तत्व विलयन में डालें तो वे शीघ्रता से उस तत्व को ग्रहण कर लेती हैं। कुछ पेड़ों पर उर्वरक छिड़कने से अगले वर्ष उनकी वृद्धि अधिक हो जाती है। कपास के बीज के साथ उर्वरक रखने से उसकी उपज बढ़ जाती है। पौधे फॉस्फेट के रूप में फॉस्फोरस ग्रहण करते हैं। भूमि का फॉस्फोरस कुछ समय पश्चात् उपयोग में आता है। इससे यह ज्ञात हुआ कि गेहूँ, मक्का आदि की खेती के प्रारंभिक काल में ही फॉस्फेट उर्वरक दिया जाना चाहिए। जड़ों के लिए अनावश्यक उर्वरकों के संबंध में हुए प्रयोगों से भी उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

कृषि के क्षेत्र में उर्वरक ग्रहण संबंधी अध्ययन में अनुरेखक के रूप में और पौधों पर विकिरण के सीधे प्रभाव के लिए रेडियो समस्थानिकों का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। फॉस्फोरस–32 का फॉस्फेट उर्वरक उद्ग्रहण के अध्ययन में प्रयोग किया जाता है। पौधे को दिए जाने वाले फॉस्फेट उर्वरक में थोड़ा फॉस्फोरस–32 मिला दिया जाता है। पौधे के द्वारा फॉस्फेट के ग्रहण करने फॉस्फोरस–32 के द्वारा उत्सर्जित विकिरण का संसूचन कर पौधे के विभिन्न भागों में उसके प्रवेश का पता लगता रहता है। इस प्रकार के अध्ययन द्वारा यह जानकारी प्राप्त होती है कि पौधा किस समय उर्वरक ग्रहण करता है और उर्वरक की कितनी मात्रा ग्रहण करता है।

उर्वरक उद्ग्रहण संबंधी अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि तंबाकू, कपास, ज्वार और चुकंदर शुरू के दिनों में ही उर्वरक से फॉस्फेट ग्रहण करते हैं, बाद में दी गई उर्वरक की मात्रा बेकार जाती है। दूसरी ओर आलू के पौधे किसी भी समय फॉस्फेट उर्वरक से लाभ उठा सकते हैं। प्रयोगों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि फलवाले वृक्षों पर फॉस्फोरस उर्वरक का विलयन डालने से कोई लाभ नहीं होता। उत्तम उपाय यह है कि 30–35 सेंटीमीटर की गहराई के छिद्रों में उर्वरक डाले जाएं।

पौधों की बीमारियों से प्रति वर्ष उपज की जो हानि होती है वह करोड़ों व्यक्तियों के भोजन के लिए पर्याप्त हो सकती है। इन बीमारियों का सामना करने के लिए समस्थानिक अच्छे मार्गप्रदर्शक सिद्ध हो रहे हैं। देखा गया है कि कीटनाशक औषधियों का पत्तियों के पीछे वाले भाग द्वारा अवशोषण केवल दिन में हो पाता है। इस अनुसंधान ने पत्तियों का रस चूसने वाले हानिकारक कीड़ों पर विजय पाना संभव कर दिया है। अनुसंधानों से यह भी ज्ञात हो सका है कि कुछ प्रकार के कीटों पर कीटनाशियों का प्रभाव नहीं पड़ पाता। अतः उनके उन्मूलन के लिए अधिक प्रभावशाली तथा घातक कीटनाशियों का उपयोग आवश्यक है।

फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीट आदि के विरुद्ध अभियान में इनकी आदतों आदि की जानकारी भी आवश्यक है। इसके लिए कुछ नमूने के कीट पकड़कर उन पर रेडियोसक्रिय पेंट लगाकर उनकी गतिविधि का अध्ययन किया जाता है। ऐसे अध्ययन से ज्ञात किया जाता है कि कौन–सा कीट किस समय और कौन से पौधे पर प्रहार करता है। कीटों को रेडियो समस्थानिकयुक्त भोजन देकर उनकी शारीरिक क्रियाओं संबंधी अध्ययन भी किया जाता है ताकि उसके परिणामस्वरूप अधिक प्रभावी कीटनाशी बनाए जा सकें।

पौधों पर विकिरणों का सीधा प्रभाव भी लाभकारी होता है। इन पर विकिरण पड़ने पर इनकी वृद्धि त्वरित हो जाती है तथा विकिरण के प्रभाव से फल तथा अनाज की गुणता में भी सुधार होता है। इसके लिए विकिरण की उचित मात्रा ज्ञात करने के लिए "गामा गार्डन" बनाए जाते हैं जिनमें पौधों को विकिरण स्रोत से अलग–अलग दूरी पर उगाया जाता है और विकिरण की भिन्न–भिन्न मात्रा के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

आजकल आलंकारिक पौधों की नई किस्मों के विकास में समस्थानिकों का उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है। जीवद्रव्य (प्लैज्मा) एवं गुणसूत्रों में उथल–पुथल के अतिरिक्त समस्थानिकों की आयनीकारक विकिरण ऊर्जा, आण्विक स्तर पर डी.एन.ए. अणु एवं जीन को भी प्रभावित करती है। यदि किसी जीन संरचना के द्विगुणन में त्रुटि आ जाती है या न्यूक्लियोटाइड की स्थिति, क्रम एवं व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन आता है तो इस प्रकार से परिवर्तित जीन द्वारा संपादित होने वाले गुणों में भी परिवर्तन आ जाता है और समस्थानिक ऊर्जा के प्रभाव से नई किस्म का सृजन हो जाता है। इस समस्त नव किस्म सृजन–क्रिया को उत्परिवर्तन प्रजनन कहा जाता है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में समस्थानिकों की मदद से किए गए अध्ययनों से ए.पी.पी. (अमोनिया पॉली फॉस्फेट) की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। ए.पी.पी. भारतीय कृषि के लिए एक नया उर्वरक है। इस जानकारी से प्रेरित होकर राष्ट्रीय केमिकल्स ऐन्ड फर्टिलाइजर्स ने क्षेत्र परीक्षण के लिए प्रयोगिक स्तर पर ए.पी.पी. का उत्पादन आरंभ किया है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के रासायनिक इंजीनियरी प्रभाग में विकसित प्रौद्योगिकी के आधार पर तैयार की गई नई नाइट्रोजन–15 चिह्नित यूरिया अब राष्ट्रीय केमिकल्स ऐन्ड फर्टीलाइजर्स भी से उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आयरन–59, मैंगनीज–54, जिंक–65, कॉपर–64, मॉलिब्डेनम–99 तथा सोडियम–24 का प्रयोग पौधों द्वारा पोषक तत्वों के ग्रहण करने तथा मिट्टी में उनकी गतिशीलता की जाँच के लिए किया गया है। इसी तरह क्रोमियम–जैसी आविषी धातुओं के समस्थानिकों का प्रयोग इन धातुओं के शोषण तथा संचयन का पता लगाने के लिए किया गया है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न कीटनाशी रसायनों की अवस्था तथा उनकी सतत उपस्थिति का पता लगाने के लिए भी समस्थानिकों का प्रयोग किया जा रहा है। भविष्य में यह आशा की जाती है कि अन्य क्षेत्रों में भी समस्थानिकों का प्रयोग, कई समस्याओं के निराकरण में उपयोगी सिद्ध होगा।

○○○

2

आबू की विशिष्ट सौंफ

डॉ. राजू लाल भारद्वाज

हमारे देश में सौंफ मसाले की एक प्रमुख फसल है। रुचिकारक, मधुर, सुगंध व स्वाद के कारण सौंफ के दाने मुख शुद्धि, सूप, आचार, सॉस, चॉकलेट व शर्बत आदि पदार्थों में डाले जाते हैं। सौंफ के मधुर स्वाद व सुगंध का आधार इसके तेल में निहित एनीथाल व फेकोन नामक तत्व है। राजस्थान के आबू क्षेत्र (सिरोही) में उत्पादित सौंफ अपनी विशेष सुगंध, स्वाद, दानों में चमक, हरे रंग व रेशे की कम मात्रा के कारण अलग पहचान रखती है। इस क्षेत्र में सौंफ की बुवाई खरीफ मौसम (मई–जून) में करते है जो जनवरी–फरवरी तक पक कर तैयार होती है। प्रति इकाई उत्पादन भी अधिक मिलता है तथा गुणवत्ता की दृष्टि से अलग पहचान बनी हुई है।

सौंफ *अम्बेलीफरी* कुल का सदस्य है। इसका तना सीधा होकर अंततः हरी संयुक्त पत्तियों में परिवर्तित हो जाता है। इसके फूल छत्तेदार, छोटे आकार के और पीले रंग के होते हैं। इसके अपरिपक्व बीज गहरे हरे तथा पकने पर हल्के हरे रंग के हो जाते है। जड़ें गहरी व विकसित होती है। शाखाएं हरी एवं चिकनी होती हैं।

भारत में सौंफ की खेती उत्तरी भारत में मुख्यतया गुजरात और राजस्थान में की जाती है। भारत में सौंफ की खेती 18000 हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जिससे सौंफ का 15–18 हजार मेट्रिक टन उत्पादन होता है। राजस्थान में सिरोही, टौंक, जोधपुर, भरतपुर, पाली, अजमेर व भीलवाडा जिलों में सौंफ की खेती की जाती है।

उपयोगिता : सौंफ का उपयोग नेत्र रोगों में, जलने पर, ज्वर प्रदाह में, पेचिश, सीने के घाव में और गुर्दारोग के उपचार में किया जाता है। इसकी पत्तियां सुपाच्य, उत्तेजक एवं सुगंधित होती है। सौंफ के सूखे बीजों का उपयोग करी पाउडर, साबुन, सॉस, शर्बत, शराब, बिस्कुट, डबलरोटी और आचार को सुगंधित बनाने के लिए किया जाता है। इसके पौधों के बचे हुए भागों का उपयोग पशु आहार व कंपोस्ट बनाने में किया जाता है।

जलवायु : आबू सौंफ की बढवार के समय थोड़ा गर्म व आर्द्र जलवायु तथा पुष्पन के समय शुष्क व ठंडा मौसम उपयुक्त रहता है। जनवरी व फरवरी माह में शुष्क व सर्द वातावरण इसकी उपज व गुणवत्ता में वृद्धि करता है। फूल आने के समय लंबी अवधि तक बादल रहने से बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है।

भूमि और भूमि की तैयारी : सौंफ की खेती के लिए उपजाऊ, जल–निकास युक्त, गहरी दोमट व काली मृदा उपयुक्त रहती है। भूमि की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद की दो जुताइयां देशी हल या कल्टिवेटर से करनी चाहिए। अंत में पाटा चलाकर खेत को समतल कर देना चाहिए। सौंफ की रोपाई मेड़ों पर होती है। अतः संपूर्ण खेत में मेड़ें बनानी चाहिए। समांतर दो मेड़ों के मध्य की दूरी 100 सेमी. के बाद 150–180 सेमी. जगह छोड़कर पुनः दो समांतर लाइनें बनानी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : सौंफ की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए बुवाई के 3–4 सप्ताह पूर्व खेत को तैयार करते समय 10–15 टन गोबर की खाद या कंपोस्ट प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिलानी चाहिए। इसके अतिरिक्त 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 40 कि.ग्रा. पोटैश प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यक होता है। नाइट्रोजन की एक चौथाई मात्रा 60 (कि.ग्रा.) व फॉस्फोरस और पोटैश की पूरी मात्रा, पौधा रोपाई से पूर्व दोनों समांतर नालियों के मध्य 7–8 सेमी. गहराई पर फैला देनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा तीन बराबर भागों में 30, 60 व 90 दिन की फसल में सिंचाई से पूर्व फसल की बगल में डालनी चाहिए। आवश्यक हो तो 5 किलोग्राम सूक्ष्म तत्वों का मिश्रण भी वर्मी–कंपोस्ट में मिलाकर सिंचाई नाली में डालकर गुड़ाई कर देनी चाहिए।

उन्नत किस्में : गुजरात सौंफ–1, पी एफ–35, एस 7–9, कोयम्बटूर–1, सेलेक्शन–16, आर एफ–101, आऱ एफ–125, ई सी–58, यू एफ–1, आबू सौंफ (स्थानीय चयन)।

बीज–दर : रोपण विधि से बुवाई करने पर 3–4 किग्रा स्वस्थ बीज प्रति हेक्टेयर आवश्यक होता है।

आबू सौंफ (स्थानीय चयन) : यह आबू क्षेत्र में उत्पादित स्थानीय रूप से चयनित किस्म है। इस किस्म की औसत उपज 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसके पौधे की औसत ऊंचाई 150–200 सेमी. होती है। इसमें फूल पौध रोपने के लगभग 60–70 दिन बाद आने लगते है। प्रति पौधे पर लगभग 30–35 अम्बेल लगते हैं। संपूर्ण फसल काल में 240 दिन लगते है।

बुवाई का समय व विधि : आबू सौंफ की नर्सरी मई–जून माह में तैयार करते है तथा 35--50 दिन बाद पौधे खेत में रोपण के योग्य हो जाते है। रोपण के लिए जुलाई–अगस्त का माह श्रेष्ठ रहता है।

नर्सरी तैयार करना : एक हेक्टेयर में सौंफ उगाने के लिए 100 वर्ग मीटर नर्सरी की आवश्यकता होती हैं। एक मीटर चौड़ी 3 मीटर लंबी व 15 सेमी. उठी हुई क्यारियों को अच्छी तरह से भुरभुरा बनाने के बाद 50 किलोग्राम वर्मीकम्पोस्ट, 1 किग्रा. नीम की खल, 1 किग्रा. एन.पी. के का मिश्रण मिलाकर समतल करना चाहिए। क्यारी में 5 सेंटीमीटर की दूरी पर 1.5 सेंटीमीटर गहरी लाइनें बनाकर ट्राइगोडर्मा (6 ग्राम किग्रा) से उपचारित बीजों की बुवाई करते है। बीज डालने के बाद उसे ढकने के लिए एक भाग वर्मीकम्पोस्ट, एक भाग बालू ,मिट्टी व अल्प मात्रा में कोकोपिट मिलाकर एक सेंटीमीटर मोटी परत बीजों पर लगाकर झारे से सिंचाई करनी चाहिए। प्रायः 10–15 दिन के बाद बीज अंकुरित होने लगता है और 35–50 दिन बाद पौधा रोपाई के योग्य हो जाता है। अगर नर्सरी में तनागलन व जडगलन की समस्या आए तो रिडोमिल नामक कवकनाशी दवा का छिड़काव व सिंचाई जल में मिलाकर प्रयुक्त करना चाहिए।

रोपाई का समय व विधि : सौंफ की रोपाई 15 जुलाई से 15 अगस्त तक मुख्य खेत में करनी चाहिए। तैयार खेत में बनाई गई समांतर मेड़ों पर 60 सेमी की दूरी पर जड़ों को भूमि में सीधा रखते हुए रोपाई करनी चाहिए। रोपाई अधिक गहरी नहीं करनी चाहिए, इससे पौधे पीले, पक कर मर जाते है तथा पैदावार में कमी आ जाती है। रोपाई के तुरंत बाद केवल नालियों में सिंचाई करनी चाहिए, 7–10 दिन के अंदर रिक्त स्थानों पर पौध लगा देनी चाहिए।

सिंचाई : पहली सिंचाई रोपने के तुरंत बाद कर देनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार 10–12 दिनों के अंतर पर सिंचाई करते रहना चाहिए। संपूर्ण फसल काल में 15–18 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। फूल आते समय व दाना बनते समय खेत में नमी की कमी नहीं रहनी चाहिए, वरना उत्पादन में भारी गिरावट आ जाती है।

निराई–गुड़ाई : पौध–रोपाई के 20–25 दिन प्रथम बार निराई–गुड़ाई कर खरपतवार नष्ट कर देने चाहिए। बाद में कम से कम दो बार हल्की निराई–गुड़ाई कर पौधों पर मिट्टी चढा देनी चाहिए। पौधो को गिरने से बचाने के लिए रोपाई के 75 दिन बाद मिट्टी चढानी चाहिए।

फसल संरक्षण :–

कीट

1. चेपा (मोयला) : इस कीट का आक्रमण फसल में फूल आने के समय से प्रारंभ होता है। चेपा नियंत्रण के लिए 0.07–0.10 प्रतिशत एन्डोसल्फॉन या 0.3 प्रतिशत मेलाथियॉन के घोल का छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार 7–10 दिन बाद छिड़काव दोहराएं, एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 800–1000 लिटर घोल पर्याप्त रहता है।

व्याधियाँ :–

(i) झुलसा (रेमुलेरिया ब्लाइट) – यह रोग रोपाई के 50–60 दिन बाद नीचे की पत्तियों पर राख जैसे छोटे–छोटे धब्बे के रूप में उभरता है। ये धब्बे धीरे–धीरे आकार में बड़े हो जाते है और कभी–कभी पूरा पौधा सूख जाता है। उपज में भारी नुकसान होता है।

(ii) बीजों को कवकनाशी दवा या ट्राइगोडर्मा से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।

(iii) बीमारी की शुरू की अवस्था में डाइथेन एम–45, 2 किलोग्राम मात्रा को 700–800 लिटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए तथा 10–15 दिन के अंतर पर पुनः दोहराना चाहिए।

(iv) बीमारी की बाद की अवस्था में 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड अथवा 0.1 प्रतिशत बाविस्टीन का छिड़काव करना चाहिए।

2. चूर्णिल आसिता (छाछिया) : इस रोग के कारण पौधे के तनों तथा पत्तियों पर चूर्ण की तरह फफूंद दिखाई पड़ती है। ग्रसित भाग का रंग पहले राख की तरह होता है, जो बाद में भूरे रंग में बदल जाता है। रोग निवारण हेतु लक्षण दिखाई देने लगते है। 20–25 किग्रा गंधक चूर्ण का बुरकाव प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए अथवा 0.2 प्रतिशत घुलनशील गंधक या 0.1 प्रतिशत कैराथेन एल.सी. के घोल का छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार 15 दिन बाश्द बुरकाव या छिड़काव पुनः दोहराना चाहिए।

3. आर्द्र गलन (तना गलन) : इसके प्रकोप से जमीन की सतह के पास से पौधे का कोमल तना काला पड़ जाता है और सड जाता है। अधिक नमी की अवस्था में बीमारी अधिक फैलती है।

(क) बोने से पूर्व कवकनाशी दवा से बीज–उपचार व ट्राइगोडर्मा से भूमि का उपचार करना चाहिए।

(ख) नर्सरी उठी हुई क्यारियों में तैयार करनी चाहिए व खेत में नियंत्रित सिंचाई व जल निकास की व्यवस्था रखनी चाहिए।

(ग) पौध शाला में रोग फैलने पर 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करना चाहिए।

4. कॉलर रॉट : तने पर अधिक ऊचाई तक मिट्टी चढ़ाने तथा मिट्टी में आवश्यकता से ज्यादा नमी रहने से पौधे के तने का भूमि से लगा भाग सड़ जाता है व पौधा मर जाता है। रोकथाम हेतु सिंचाई आवश्यकतानुसार करें तथा प्रकोप होने पर 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिडकाव करें तथा तने के पास ड्रेंच करना चाहिए।

5. गमोसिस रोग : इस रोग का आक्रमण पुष्पक्रमों पर होता है। पुष्पक्रमों से चिपचिपा गोंद जैसा पदार्थ निकलता है जिसके कारण इस पर ब्लैक मोल्ड (कवक) वृद्धि करना शुरू कर देती है। जिन खेतों में आवश्यकता से अधिक सिंचाई एवं नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों का प्रयोग किया जाता हो या पुष्पन के समय लंबे समय तक कोहरा रहे वहां इसका प्रकोप बढ़ जाता है।

रोग के प्रकोप को कम करने के लिए स्वस्थ बीजों का उपयोग करना चाहिए। दीर्घकालीन फसल चक्र अपनाना चाहिए, संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में सूक्ष्म तत्वों का मिश्रण (मल्टिप्लेक्स) का छिड़काव करना चाहिए। चेपा नियंत्रण हेतु एन्डोसल्फॉन का छिड़काव करना चाहिए।

कटाई व सुखाना : सौंफ की कटाई हरे और कच्चे बीज तथा सूखे बीज दोनों के लिए की जाती है। हरे बीजों के लिए हरी अवस्था में तथा सूखे बीजों के लिए दानों को हल्का पीला होते समय गुच्छों की कटाई कर लेनी चाहिए। गुच्छों को सुखाने के लिए घासफूस या ज्वार/बाजरे की करब से छप्पर बनाते है जिसको उत्तर दिशा को छोड़कर तीन तरफ से ढक देते है। छत पर घास थोड़ा छितरा कर डालते है जिससे सूर्य का हल्का प्रकाश अंदर पहुंचे। घर के अंदर दो–तीन

फुट के अंतराल पर दोनों किनारों पर बांस या बल्लियां गाड़ते हैं। इन बल्लियों पर ऊपर से नीचे की ओर एक–एक फुट पर रस्सियां बांधकर सौफ के गुच्छों को व्यवस्थित कर देते हैं। जब ये गुच्छे सूख जाते है तब इन्हें लकड़ी के डंडे से कूटकर सौंफ अलग कर देते हैं।

1. गुच्छों को हल्की छाया में सुखाना चाहिए जिससे सौंफ का रंग व खुशबू अच्छी बनी रहे।

2. हरी सौंफ हेतु तुड़ाई थोड़ी कच्ची अवस्था में करनी चाहिए तथा साधारण सौंफ हेतु भी फसल को ज्यादा नहीं पकने देना चाहिए।

3. गुच्छे थोड़े छितरे हुए होने चाहिए तथा हवा का आवागमन अच्छा होना चाहिए।

उपज : आबू सौंफ की उपज सौंफ की साधारण फसल से ज्यादा होती है। औसत उपज 25 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

भंडारण : पूर्णतया साफ व सुखाए हुए सौफ के दानों को, जिनमें 7–9 प्रतिशत तक नमी शेष हो, साफ पॉलिथीन लगी बोरियों में भरकर नमी रहित गोदामों में भंडारित करना चाहिए।

संभावनाएं –

1. आबू सौंफ की उन्नत किस्मों का विकास किया जाए।

2. महत्वपूर्ण बीमारियों की रोकथाम एवं सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति हेतु समन्वयक पैकेज तैयार किया जाना चाहिए।

3. सौंफ से बनने वाले विभिन्न उत्पादों को ग्रामीण स्तर पर तैयार करने की विधि का विकास, उनका मानकीकरण तथा प्रसार करना चाहिए।

4. सौंफ के उत्पादों का विविधीकरण व उचित कीमत निर्धारण करना चाहिए।

ooo

3

रंजकों का परीक्षण

श्री श्याम सुदर बैरवा

रंजक मुख्य रूप से कपड़ों की रंगाई के काम आते हैं। इसके अलावा ये भोजन, कागज, चमड़े आदि को रंगने के काम भी आते हैं। हमारे आसपास जो रंगीन दुनिया है, उसे बनाने में रंजकों का काफी योगदान है।

भोजन के पश्चात् मनुष्य की दूसरी सबसे बड़ी आवश्यकता कपड़ा होती है। एक सभ्य संसार में रहने के लिए मनुष्य को अपने तन पर कपड़ा चाहिए। इसके आलाव मौसम के उतार–चढ़ाव से बचने तथा अपने आपको अधिक अच्छा प्रदर्शित करने के लिए भी कपड़ों की आवश्यकता होती है।

रंजक सफेद शांत दुनिया को शोख, चंचल और उत्साह से भरपूर बनाते हैं। कल्पना करें कि इस दुनिया में मात्र सफेद या काला, बस दो ही 'रंग' होते तो कैसा लगता! रंग–बिरंगे फूल, पक्षी, पेड़–पौधे, अन्य जीव जंतु और आकाश में बनने वाली छटाएं; ये सब रंगहीन होते तो दुनिया कितनी नीरस होती!

प्राचीन समय में प्राकृतिक रंजक काम में लिए जाते थे परंतु उनकी अपनी सीमाएं होती थी। अतः वर्तमान समय में संश्लेषित रंजक (Synthetic Dye) अधिक काम आते हैं।

कपड़ों पर चढ़े संश्लेषित रंजकों के परीक्षण की विधियां निम्नांकित हैं :–

1. सूती तथा अन्य सेलुलोसी तंतुओं से बने वस्त्रों पर चढ़े रंजकों की पहचान :

सेलुलोसी तंतु जैसे सूत, विस्कोस, रेयान, लिनेन, जूट आदि मुख्यतः अभिक्रियाशील (Reactive), वैट (Vat), नेफ्थॉल, अम्लीय (Acidic), क्षारकीय (Basic) तथा गंधकीय रंजकों से रंगे जाते हैं।

क्रमबद्ध तरीके से इनकी पहचान निम्न प्रकार करते हैं :–

एक परीक्षण नमूना (Test Specimen) लेते हैं तथा इसे (अ) 50 प्रतिशत डायमेथिल फॉर्ममाइड ($HCON(CH_3)_2$ या (ब) सांद्र डायमेथिल फॉर्ममाइड या (स) ग्लेशियल ऐसीटिक अम्ल तथा स्पिरिट के 1% घोल के साथ रुक–रुक कर 3–4 मिनट तक धोते है, एवं निचोड़ते हैं।

<table>
<tr><th>प्रथम समूह</th><th colspan="2">द्वितीय समूह</th></tr>
<tr><td rowspan="2">अगर रंग बिलकुल नहीं निकले या थोड़ा सा ही निकले, तो यह अभिक्रियाशील रंजक या अंतजर्नित रंजक (Ingrain Dye) हो सकता है।</td><td colspan="2">अगर रंग निकले, तब एक नया परीक्षण नमूना लेते हैं और इसे 1% अमोनिया हाइड्रॉक्साइड (NH_4OH) के विलयन में एक–दो मिनट तक उबालते हैं।</td></tr>
<tr><td>अगर रंग निकले, तब विलयन को दो भागों में बांटते हैं। परीक्षण नमूने को निकालकर एक भाग में सफेद विरंजित सूती कपड़े का एक टुकड़ा डालते हैं और 25 मि.ग्रा. नमक डालकर दो मिनट तक उबालते हैं। इसे ठंडा करते एवं छान लेते हैं।</td><td>अगर रंग नहीं निकले या बहुत कम निकले तो एक नया टुकड़ा लेते हैं। उसमें 1 मि.ली. ऐसीटिक अम्ल मिलाकर गर्म करते हैं फिर 3–4 मि.ली पानी मिलाकर उबालते हैं। परीक्षण नमूने को निकाल लेते हैं और 25 मि.ग्रा. रंग बंधक (Mordant) व सूती कपड़ा डालकर दो मिनट तक उबालते हैं।</td></tr>
</table>

प्रथम समूह	द्वितीय समूह	
	अगर विरंजित कपड़े का रंग लगभग वास्तविक छाया (Shade) जैसा हो, तो दूसरे भाग में सूती कपड़े का टुकड़ा डालते हैं। अगर यह बिना छाया (Shade) का रहे या केवल धब्बा दे, तब ऐसीटिक अम्ल मिलाते हैं और सफेद ऊनी कपड़े को एक मिनट तक रंगते हैं। अगर ऊनी कपड़ा रंग जाए तो यह अम्लरंजक (Acid Dye) है।	अगर रंगबंधित कपड़ा रंग जाता है तो क्षारकीय रंजक उपस्थित है।

तृतीय समूह के रंगक तुरंत अपना रंग छोड़ देते हैं या छाया परिवर्तित करते हैं। नमूना परीक्षण का रंग H_2O_2 (हाइड्रोजन पराक्साइड) या हवा में रखे जाने से वापस आ सकता है।

प्रथम समूह	द्वितीय समूह	तृतीय समूह
नया नमूना लेते हैं। उसमें 2–3 मि. ली. पानी मिलाते हैं। तत्पश्चात् 500 मि.ली. सोडियम सल्फेट मिलाते हैं; और 2 मिनट तक उबालते हैं। नमूने को निकाल लेते हैं और 25 मि.ग्रा. नमक मिलाते हैं। एक टुकड़ा श्वेत विरंजित सूती कपड़े का लेते हैं और विलयन में डालकर विलयन को दो मिनट तक उबालते हैं। विरंजित श्वेत कपड़ा यदि रंजित हो जाता है तो परीक्षण नमूना और श्वेत सूती विरंजित कपड़ा लेकर उन्हें फिल्टर पत्र पर रखते हैं और रंजक को पुनः ऑक्सीकृत करते हैं। रंजक को श्वेत सूती कपड़े पर चढ़ाते हैं। श्वेत सूती कपड़ा अपने वास्तविक छाया (Shade) में पुनः रंजित हो जाता है, जो **गंधकी रंजक** की उपस्थिति दर्शाता है।	यदि विरंजित सूती कपड़ा सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम सल्फेट के साथ क्रिया कर पुनः रंजित नहीं होता है तो एक नया परीक्षण नमून वाष्पन डिश में लेते हैं। उसमें 2–3 मि.लि. सान्द्र गंधक का अम्ल डालते हैं एवं अच्छी तरह हिलाते हैं। निचोड़ को परखनली में उँड़ेलते हैं और उसमें 25 मि.ली पानी डालकर छानते हैं। फिल्टर को पानी के साथ धोते हैं और उस पर 10% सोडियम हाइड्रॉक्साइड के विलयन का धब्बा लगाते हैं। यदि धब्बा लाल हो जाए तो **एनिलीन ब्लैक रंजक** उपस्थित है।	अगर गंधक रंजक तथा ऐनिलीन रंजक, दोनों ही नहीं हैं, तब एक नया परीक्षण नमूना लेते हैं और इसे सोडियम सल्फोक्सिलेट फॉर्मेल्डिहाइड ($NaHSO_2.HCHO).2H_2O$ तथा ग्लाइकॉल विलयन में 44% सोडियम हाइड्रॉक्साइड की कुछ बूंदे डालकर कुछ समय उबालते हैं। परीक्षण नमूने का रंग उतर जाता है या छाया परिवर्तित हो जाती है। विलयन का रंग पीला, नीलाभ या लाल रहता है। वैट रंजक विकासक (Vat Colour Developer) द्वारा वास्तविक रंग आ जाता है। **वैट रंजक** उपस्थित है।

चौथे समूह के सभी रंजक पुनःऑक्सीकरण होने पर रंग खो देते हैं और उनका वास्तविक रंग प्राप्त नहीं होता है।

प्रथम समूह	द्वितीय समूह	तृतीय समूह	
6 ग्राम. लगभग नया परीक्षण नमूना लेते हैं और इसे पोर्सिलीन क्रुसिबल में जलाते हैं। इसमें 200 मि.ग्रा. फ्लक्स (समांग मात्रा में सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम नाइट्रेट) मिलाते हैं और संगलित करते हैं। संगलित पदार्थ को जब गर्म करते हैं तो इसका रंग नारंगी पीला होता है तथा ठंडा करने पर हरा–पीला होता है। यह स्वतः रंजक की उपस्थिति दर्शाता है। यह स्वतः रंजक क्रोमियम लवण से पश्च उपचारित (after treated) है। अगर क्रोमियम लवण अनुपस्थित हो तो परीक्षण नमूने को जलाते हैं और राख को सांद्र नाइट्रिक अम्ल की कुछ बूंदों में घोलते हैं। इसमें 2 मि.ली. पानी मिलाकर उबालते हैं और ठंडा करते हैं। फिर 2 मि.ली. सांद्र अमोनियम हाइड्रॉक्साइड मिलाते हैं। नीला रंग स्वतः रंजक की पुष्टि करता है जो नीले थोथे से पश्च–उपचारित है।	अगर क्रोमियम और ताम्र लवण से उचारित स्वतः रंजक अनुपस्थित है, तब एक नया परीक्षण नमूना लेते हैं और इसे 5% उबलते गंधक के अम्ल से क्रिया कराते हैं। ठंडा करके 1% कार्बोजोल का विलयन बूंद–बूंद करके डालते हैं। नीला अवक्षेप फॉर्मेल्डि–हाइड की उपस्थिति दर्शाता है। इससे फार्मेल्डिहाइड से पश्चउपचारित स्वतः रंजक की उपस्थिति की पुष्टि होती है।	एक नया परीक्षण नमूना लेते हैं। इसमें 2–3 मि.ली. पिरीड़ीन डालकर उबालते हैं। इस उपचार को दो–तीन भाग नये (ताजा) पिरीडीन के लेकर दोहरते हैं।	
		परीक्षण नमूना से रंग निकलता है और यह क्रिया करने से रंग लगातार निकलता जाता है। ऐज़ोइक रंजक उपस्थित है।	परीक्षण नमूना रंग नहीं छोड़ता है। अधिकतर मामलों में रंग निकलना बंद हो जाता है या कम हो जाता है। डाइऐजोटाइज्ड तथा विकसित (Developed) रंजक उपस्थित है।

सूती तथा अन्य सेलुलोसिक वस्त्रों पर चढ़ाए जाने वाले रंजकों की पहचान के लिए निश्चयात्मक परीक्षण :–

स्वतः रंजक	क्षारकीय रंजक	गंधक रंजक	वैट रंजक	वर्णक	ऐनिलीन ब्लैक	ऐज़ोइक रंजक	अंतर्जनित रंजक
परीक्षण नमूना लेकर इसे 5% सोडियम हाइड्रॉक्साइड में ½ मिनट तक उबालते हैं। इसमें थोड़ा सा मर्सरीकृत सूती कपड़ा डालते हैं। इसे दस मिनट तक रंगते हैं। सूती कपड़े पर चढ़ा रंजक 1% अमोनियम हाइड्रॉक्साइड के विलयन से नहीं उतरता है। 2. परीक्षण नमूना लेते हैं। इसमें थोड़ा सा ठंडा एथिलीन डाई अमीन मिलाकर कुछ समय हिलाते हैं। निकलने वाले रंग में पानी मिला कर इसे तनु करते हैं एवं श्वेत सूती कपड़े के कुछ टुकड़े इसमें डालकर 80°C तक गर्म करते हैं। थोड़ा–सा नमक डालकर ठंडा करते हैं। श्वेत सूती कपड़े रंजित हो जाते हैं जोकि	परीक्षण नमूना लेते हैं इसमें 1 मि.ली. 5% सोडियम हाइड्रॉक्साइड का विलयन डालकर गर्म करते हैं। इसमें 5% नौसादर का 4 मिली. विलयन मिलाते हैं और पुनः उबालते हैं। इसमें से थोड़ा सा छनित लेते हैं और इसमें बिना रंग किया सादा ऊनी कपड़ा डालते हैं एवं ठंडा होने के लिए छोड़ देते हैं। अधिकांश रंजक ऊन द्वारा सोख लिया जाता है। छनित को 10% ऐसीटिक अम्ल द्वारा अम्लीकृत करते हैं और उसमें टैनिन अभिकर्मक डालते हैं। रंगीन अवक्षेप बनता है। छनित को अम्लीकृत करने के	परीक्षण नमूना लेकर उसे एक परखनली में डालते हैं एवं टिन क्लोराइड ($SnCl_2$) के विलयन में उबालते हैं। इस परखनली का मुंह लेड ऐसीटेट भीगे छन्ना पत्र से ढंकते हैं। छन्ना पत्र पर भूरे रंग के धब्बे गंधक रंजक की उपस्थिति दर्शाते हैं। टिप्पणी : गहरे भूरे धब्बे भी इसकी पुष्टि करते हैं। गंधक रंजक की उपस्थिति को दर्शाते हैं। 2. अधिक समय तक उबालने से नमक का अम्ल बनता है जिससे रंग उड़ जाता है। परीक्षण नमूने को एथिलीन डाइ अमीन के साथ उबालते हैं। रंजक तुरंत उतर जाता है।	परीक्षण नमूने को सोडियम हिसलेट फॉर्मेल्डिहाइड तथा ग्लाइकॉल के विलयन में, जिसमें थोड़ा सा 44% का NaOH विलयन हो, उबालते हैं। एक अलग परिवर्तन नजर आता है। परीक्षण नमूने को धोते हैं। वास्तविक रंग दिखाई देता है। यदि नहीं दिखाई दे तो परीक्षण नमूने को वैट रंजक स्थिर करने वाले (Vat Dye Developer) या हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2) के साथ क्रिया करते हैं। परीक्षण नमूने को थोड़े से एथिलीन डाई अमीन तथा ग्लूकोस के साथ क्रिया कराते हैं। रंग पूर्णतया या थोड़ा सा उड़ जाता है, जब क्रिया शुरू होती है, या उबालना शुरू करते हैं।	*वैट वर्णक :–* परीक्षण नमूने को मेथिलीन पिरोली–डोन के साथ उपचारित करते हैं। जोकि रेजिनयोजक को प्लास्टिसाइज करता है। वैट रंजक की उपस्थिति का परीक्षण करते हैं। *ऐज़ोइक वर्णक* लगभग 20 मि.ली. परीक्षण नमूना लेते हैं और इसे 30 सेकंड के लिए 1 मि.ली. परीक्षण नमूने से उपचारित करते हैं एवं ठंडा करते हैं। इसमें 5% सोडियम हाइड्रॉक्साइड तथा 25–50 मि.ली. सोडियम हाइड्रोसल्फाइट मिलाते हैं। नमूने को श्वेत, हल्का पीला या नारंगी होने तक उबालते हैं व विलयन	एक परीक्षण नमूना लेकर इसे सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ कम तापमान पर क्रिया कराते हैं। पानी के साथ विलयन को तनु करते हैं। हरा रंग मिलता है। परीक्षण नमूने को एक मिनट तक सोडियम हाइपोक्लोराइट में उपचारित करते हैं। नमूना भूरे रंग का हो जाता है। पाँच ग्राम परीक्षण नमूना लेते हैं और इसको जलाकर राख कर लेते हैं। लोहा या तांबा होने के लिए राख का परीक्षण करते हैं। लोहे या तांबे का धनात्मक परीक्षण उक्त तत्वों की उपस्थिति बताता है जोकि ऐनिलीन के साथ मौजूद है।	एक परीक्षण नमूना लेते हैं। पर्याप्त मात्रा में इसमें एथिलीन डाई एमीन मिलाते हैं और कुछ समय तक उबालते हैं। दिखने योग्य मात्रा में रंजक निकल जाता है। इस रंजक को दो भागों में बांटते हैं। पहले भाग में थोड़ा सा सोडियम हाइड्रोसल्फाइट मिलाते हैं। यदि जरूरत हो तो गर्म करते हैं। स्थायी रूप से रंग उड़ जाता है। दूसरे भाग को पानी मिलाकर तनु करते हैं तथा उबालते हैं। तरल गंदला हो जाता है तथा रंगीन वर्णक के पत्रक नीचे बैठ जाते हैं। परीक्षण नमूना लेते हैं, इसमें थोड़ा सा रेंगोलाइट सी (सोडियम सल्फो–क्सिलेट फार्मेल्डिहाइड $NaHSO_2CH_2O.2H_2O$) तथा ग्लाइकॉल	A. *थैलोजन ग्रीन* परीक्षण नमूना लेते हैं, उसमें एक मि.ली. मेथिल पिरिलोडीन मिलाते हैं। इसमें गर्म करते हैं और फिर 70°C तक ठंडा करते हैं फिर इसमें 1–2 मि.ली. 10% सोडियम हाइड्रोसल्फाइट मिलाते हैं तथा उबलने तक गर्म करते हैं। परीक्षण नमूने का रंग गहरा बैंगनी हो जाता है। परीक्षण नमूने को हटाते है तथा फिर इसे 20% ऐसिटिक अम्ल के घोल में रखते हैं। रंग बैंगनी ही रहता है। B. *थैलोजन ब्लू* उपरोक्त परीक्षण में परीक्षण नमूना का रंग उपचयित नहीं होता है। परीक्षण नमूने को तनु नाइट्रिक अम्ल द्वारा धब्बा लगाते हैं। रंग बैंगनी में बदल जाता है। परीक्षण

स्वतः रंजक	क्षारकीय रंजक	गंधक रंजक	वैट रंजक	वर्णक	ऐनिलीन ब्लैक	ऐज़ोइक रंजक	अन्तर्जनित
उबलते हुए 1% NH_4OH से नहीं हटते हैं। (डॉयऑक्सेन रंजक यह परीक्षण नहीं दर्शाते है।) फॉर्मेल्डिहाइड से पश्चउपचारित स्वतः रंजक – परीक्षण नमूना लेते हैं। इसे 12 N गंधक के अम्ल में डालकर निचोड़ते हैं। फिर 1 से 2 मि.ली. गंधक का अम्ल तथा 4–5 बूंद क्रोमोटोपिक अम्ल डालते हैं। बैंगनी लाल रंग का आना इस प्रकार के रंजक की पुष्टि करता है।	बाद उसमें 1% फेरिक क्लोराइड का (Fe_2Cl_6) विलयन मिलाते हैं। एक काला अवक्षेप मिलता है जो क्षारकीय रंजकों की उपस्थिति को दर्शाता है।	परीक्षण नमूने को सोडियम हाइ–पोक्लोराइट विलयन के साथ उपचारित करते हैं। नमूना श्वेत विरंजित हो जाता है या राख के रंग जैसा हो जाता है। (इंडो कार्बन ब्लैक रंजक उपरोक्त परीक्षण नहीं दर्शाता हैं) गंधक रंजक उप–स्थित है।		को छानते हैं तथा 25 मि.ग्रा. नमक तथा एक दो टुकड़े सूती कपड़े के डालते हैं। इसे 1 मिनट तक उबालते हैं और ठंडा करते हैं। श्वेत सूती कपड़ा लेते हैं इसमें डालते हैं एवं सुखाते हैं। नेफ्थोल ए.एस वर्णक पीला जबकि बीटा नेफ्थोल वर्णक गहरे रंग में होगा जो कि भूरे रंग में बदल जाएगा।		का विलयन मिलाते हैं। (जिसमें का 44% NaOH विलयन का विलयन मिला रहता है) तथा उबालते हैं। मुख्यतः रंजक का रंग उड़ जाता है या पीला हो जाता है। परीक्षण नमूना लेकर इसे तरल फिनोल में डुबोते हैं। नमूने को बाहर निकाल लेते हैं तथा हल्का निचोड़ते हैं। दो छन्ना पत्रों के मध्य परीक्षण नमूना को रखते हैं और या तो गर्म लोहा से या भाप नालिका से दबाते हैं। छन्ना पत्र पर धब्बे आ जाते हैं। एक परीक्षण नमूना लेते हैं। इसे 10% सोडियम हाइ–ड्रॉक्साइड एजोइक वर्णक तथा मोनो– इथाइलिन ईथर (या इथाइलीन ग्लाइकॉल) मिलाते हैं। ऐजोइक रंजकों का रंग (उबालने पर) उपचयित हो जाता है तथा रंग, रंगहीन या पीला हो जाता है। यह परीक्षण मुख्यतः विस्कोस रेयॉन के लिए चयनित करते हैं।	नमूने के सांद्र गंधक के अम्ल से धब्बा लगाते हैं। रंग चमकीला हरा हो जाएगा। C. *एल्सियन ब्लू* उपरोक्त परीक्षण में नमूने का रंग बैंगनी हो जाता है। अगर परीक्षण नमूना 20% ऐसिटिक अम्ल में रखा जाता है तो इसका रंग हरा हो जाता है। नमूना परीक्षण पर नाइट्रिक अम्ल का धब्बा लगाने पर बैंगनी तथा गंधक के अम्ल का धब्बा लगाने पर यह हरे रंग में बदल जाता है।

मानव निर्मित रेशों पर प्रयुक्त रंजकों का परीक्षण

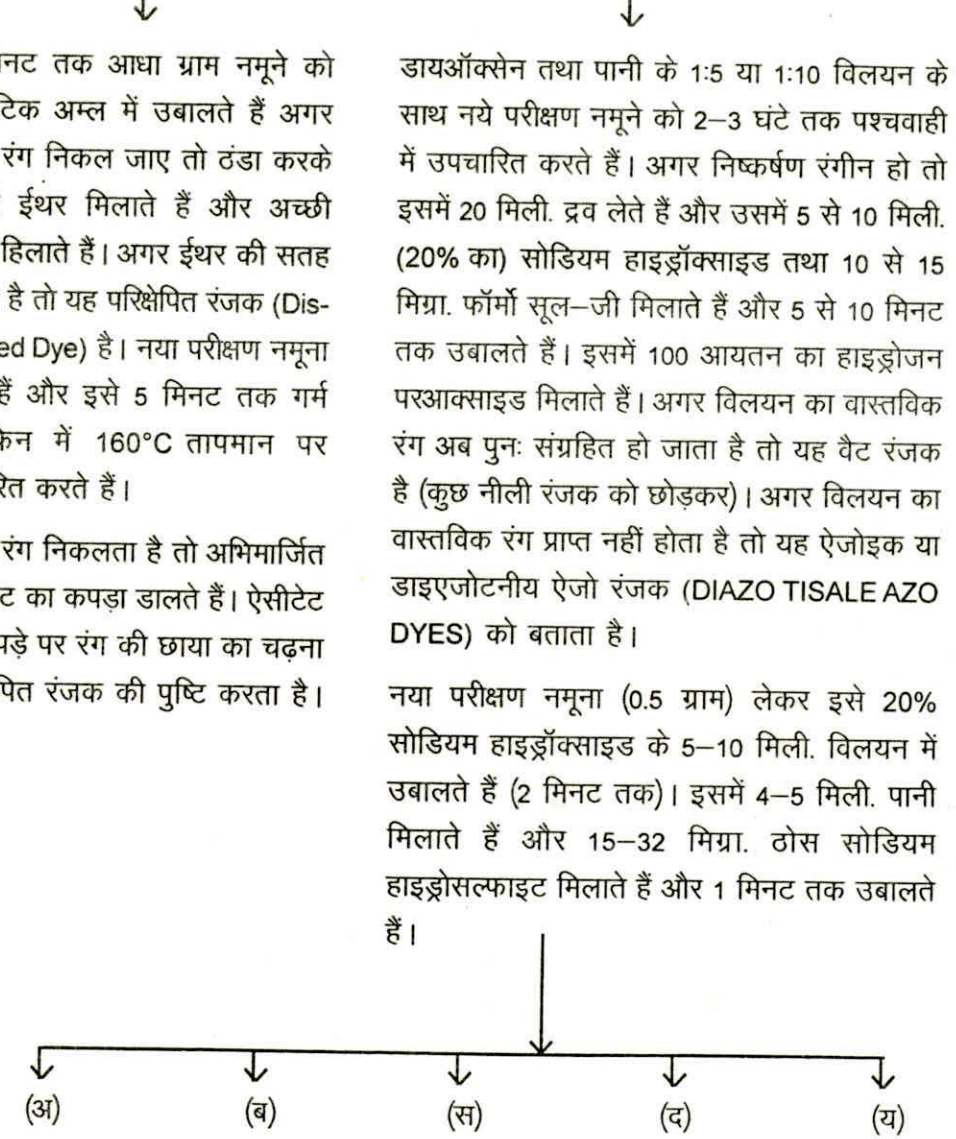

(आगामी पृष्ठों पर है।)*

(क) अगर बहुत अधिक रंग निकलता है तो इसे दो भागों में बाँटते हैं :–

तीसरा भाग

(अ)

यदि रंग नष्ट हो जाता है या अलग आभा में बदल जाता है और वायु के साथ संपर्क से पुन संग्रहित हो जाता है तो यह गंधक रंजक (Sulphur Dye) या गंधकीकृत वैट रंजक को बताती है। 30 सैकंड तक 16% नमक के अम्ल में परीक्षण नमूने को उबालते हैं, ठंडा करते हैं और इसमें 3 मिग्रा. मैग्नीशियम रिबन या शुद्ध यशद रज डालते हैं और 2 से 3 मिनट तक उबालते हैं।

लेड ऐसीटेट से भीगे हुए छन्ना पत्र को परखनली के मुंह पर रखते हैं, अगर छन्ना पत्र का रंग चमकीला काला हो जाए और भाप की गंध हाइड्रोजन–सल्फाइड जैसी हो तो गंधक या गंधीकृत वैट रंजक की उपस्थिति निश्चित है। नया परीक्षण नमूना ठंडे तथा तनु सोडियम हाईपोक्लोराइड के साथ 5-10 मिनट तक उपचारित किया जाता है। अगर नमूना रंगहीन हो जाए तो गंधक रंजक निश्चित है।

(ब)

अगर परीक्षण नमूना का रंग तुरंत भूरा बन जाता है और वायु से क्रिया कर काला हो जाता है तो यह ऐनिलीन ब्लेक की 39 स्थिति को दर्शाता है।

एक नया परीक्षण नमूना लेते हैं। इसे कुछ सैकंड तक सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल में गर्म करते हैं तथा द्रव में कुछ ठंडा पानी डालते हैं।

अगर हल्का हरा रंग आता है तो ऐनिलीन ब्लैक की उपस्थिति निश्चित है।

(स)

अगर रंग किसी अन्य आला (Tone) में अपचयित हो गया हो तथा वायु से ऑक्सीकृत होकर पहले जैसा रंग पुनः प्राप्त हो जाता हो तो यह वैट रंजक अथवा एन्थ्राक्यूनोन क्रियाशील रंजक की उपस्थिति दर्शाती है।

एक नया परीक्षण नमूना को ठंडे तनु सोडियम हाइड्रोसल्फाइट के विलयन में 5 से 10 मिनट तक उपचारित करते हैं। अगर परीक्षण नमूना का रंग बदरंग हो जाता है तथा 0.2% सोडियम हाइड्रोसल्फाईट के ठंडे घोल में 2 मिनट क्रिया कराने पर भी पुनर्सग्रहित नहीं होता है तो यह एन्थ्राक्यूनोन अभिक्रियाशील रंजक की उपस्थित बताता है।

(द)

अगर परीक्षण नमूना का रंग नहीं बदलता है तो यह क्रोम रंजक की उपस्थित दर्शाता है। एक–दो मिनट के लिए परीक्षण नमूना को 16: नमक के अम्ल में गर्म करते हैं, ठंडा करने के बाद इसमें 57:43 अनुपात में पिरिडीन पानी मिलाते हैं। अगर विलयन से रंग निकलता है तब कुछ रंगबंधित की हुई ऊन विलयन में मिलाते हैं तथा 2-3 मिनट गर्म करते हैं। यदि ऊन पर रंग चढ़ जाता है तो यह क्रोम रंजक है।

(य)

अगर परीक्षण नमूने का स्थायी रूप से रंग उतर जाता है या रंग अन्य आभा में बदल जाता है तथा ऑक्सीकरण करने पर वापस रंग नहीं आता है तो यह ऐजोइक या डाइऐजोटाइज्ड एजोइक रंग या नॉय एन्थ्राक्यूनोन क्रियाशील रंजक है।

ऐजोइक तथा कुछ डाई ऐजोटाइज्ड ऐजो रंजक 0.5 ग्राम नये परीक्षण नमूने को पाँच मिली पिरिडीन में 1-2 मिनट तक उबालते हैं। रंग का अत्यधिक स्राव (Bleeding) ऐजोइक रंजक को दर्शाती है।

रंग का थोड़ा सा स्राव विकसित परिक्षेपित रंजक की उपस्थिति दर्शाता है।

अगर कुछ भी स्राव न हो तो स्वतः रंजक निश्चित है 0.5 ग्राम नये परीक्षण नमूने को अनायनिक (Non ionic) साबुन के साथ 58 से 90°C तापमान पर 2-3 मिनट तक उपचारित करते हैं। परीक्षण नमूने को निकालते हैं इसमें 0.5 ग्राम अभिमार्जित कपास मिलाते हैं तथा 2-3 मिनट तक उबालते हैं। अगर कपास पर धब्बे (Stains) लग गये हो तो स्वतः रंजक ;डाई ऐजोटाइज्ड तथा विकसित निश्चित है। अगर कोई धब्बे न हो तो विकसित परिक्षेपित रंजक निश्चित है।

अभिक्रियाशील रंजक : 0.5 ग्राम परीक्षण नमूने को 1 मिलि./लिटर सल्फ्यूरिक अम्ल तथा 2 ग्राम प्रति लीटर सोडियम सल्फेट के विलयन में पश्चवाही क्रिया कराते हैं। समय 15 मिनट रखते हैं। अगर रंग स्रावित होता है तो इसमें अभिमार्जित ऊन डालते हैं। अगर ऊन पर धब्बे आ जाए तो यह अभिक्रियाशील रंजक की उपस्थिति दर्शाता है। विषमचक्रीय हैलोजीनाइज्ड तरह की)। अगर कोई धब्बा नहीं है तो उक्त समूह के अलावा अन्य अभिक्रियाशील रंजक मौजूद हैं।

4

जैविक खेती : क्या है और इसे क्यों व कैसे अपनाएं

डॉ. शंकर लाल एवं श्री धर्मेंद्र कुमार

जैविक खेती जिसे अंग्रेजी में **ऑर्गेनिक फार्मिंग** भी कहते हैं, फसलें उगाने की वह पद्धति है जिसमें कृत्रिम एवं रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक व बीमारीनाशक दवाओं, वृद्धि उत्प्रेरक रसायनों इत्यादि का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसके स्थान पर वैज्ञानिक सिद्धांतों पर बनाए गए फसल चक्रों को अपनाकर, फसल के अवशेषों, हरी खाद व प्रक्षेत्र के अतिरिक्त उत्पन्न होने वाले कूड़े कचरे को खाद रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें दलहनी फसलों को फसल चक्रों में अधिक से अधिक समावेश करना, लवण प्रदान करने वाली मृदाओं व शैलों का प्रयोग एवं कीट व बीमारियों और खरपतवारों का प्रबंधन जैविक विधि द्वारा करना शामिल हैं।

लगातार अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में जैविक तत्वों की कमी हुई है। रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रयोग से कीटों में इनके प्रति प्रतिरोधकता आ गई है जिसके कारण इन दवाओं पर काबू पाना कठिन हो गया है। ऐसे ही परिणाम खरपतवार नाशी एवं बीमारी नाशक दवाओं के मिले हैं। अतः इन रासायनिक दवाओं के प्रयोग से न केवल फसल उत्पादन लागत में वृद्धि हुई है बल्कि मृदा, जल और वातावरण प्रदूषण को बढ़ावा मिल रहा है। इन रसायनों के अवशेष खाद्यान्नों, सब्जियों और फलों में पाए गए हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इसके कारण इनके प्रयोग से हमारी खाद्य सुरक्षा एवं भूमि की उत्पादन क्षमता और टिकाऊपन को भीषण खतरा पहुंच गया है। अतः जैविक खेती ही उपरोक्त खाद्यान्न, मृदा, जल एवं वातावरण सुरक्षा के लिए एक मात्र विकल्प है। इस कृषि पद्धति को विदेशों में भी अपनाया जाने लगा है और इस विधि से उत्पादित उत्पादों का मूल्य भी अधिक मिलता है।

जैविक खेती क्यों अपनाएं :– रासायनिक उर्वरकों, कीट, फफूंदी एवं खरपतवार नाशक दवाओं के प्रयोग से कृषि उत्पाद जैसे अनाज, तिलहन, फल, सब्जी आदि विषाक्त होते जा रहे हैं। कीट, फफूंदी व खरपतवारों में इनके प्रति प्रतिरोध बढ़ता जा रहा है। इसके साथ ही साथ मृदा में विषाक्तता में वृद्धि और उर्वरता में ह्रास हुआ है। इन सब रसायनों का निर्माण भूमिगत पेट्रो रसायनों की सहायता से किया जाता है जिनका तीव्रगति से दोहन हो रहा है। जैविक विधि से कृषि को अपनाने से उपरोक्त कुपरिणामों से बचा जा सकता है और कृषि उत्पादन लागत में भी बचत की जा सकती है।

यह अनुमान लगाया गया है कि देश में 60 से 70 करोड़ टन कृषि से उत्पन्न अवशेष प्रति वर्ष पैदा होता है। लेकिन बड़े खेद का विषय है कि इसका शायद 10 प्रतिशत ही जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता हो। शेष मात्रा अव्यवस्थित रूप से सड़ती गलती रहती है जो कि वातावरण के प्रदूषण का एक स्रोत है। यदि इस संपूर्ण कूड़े–कचरे को जैविक खाद के रूप में लाया

जाए तो देश की 70 प्रतिशत वर्षा पर आधारित कृषि में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसके साथ ही साथ इससे उत्पन्न होने वाले प्रदूषण की समस्या का निदान भी हो सकेगा। अतः किसान और देश हित में जैविक कृषि आवश्यक है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि विश्व के विकसित देशों ने भी जैविक कृषि को अपनाना आरंभ कर दिया है और इससे उत्पादित उत्पादों का 30 से 40 प्रतिशत अधिक मूल्य मिलता है।

जैविक कृषि के सिद्धांत

1. मृदा में जीवांश की पर्याप्त मात्रा बनाए रखना।
2. भूमि में सक्रिय गतिविधियों को प्रोत्साहन देना।
3. फसल चक्रों में दलहनी फसलों, भूमि–संरक्षण फसलों हरी खाद एवं अंतर फसलों का समावेश।
4. भूमि में अधिक से अधिक केंचुओं की संख्या में वृद्धि।
5. प्रक्षेत्र व बाग के चारों तरफ वायु रोधक वृक्षों के रोपण को प्रोत्साहन।
6. वायु व जल द्वारा क्षरण रोकने हेतु सस्य क्रियाओं को प्रोत्साहन।

जैविक खेती की विधि एवं उसके अवयव :– रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को कम करने का एक मात्र विकल्प गांव में अधिक से अधिक संख्या में पशुओं को पालना तथा उनसे प्राप्त गोबर, मूत्र, कूड़ा, कचरा, खरपतवार, फसल के अवशेष, मिट्टी तथा पानी को जीवगतिक विधि द्वारा जैविक खाद बनाकर प्रयोग करना हैं। विभिन्न विधियों द्वारा जैविक खाद बनाने का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

कंपोस्ट का निर्माण :– भूमि में पाए जाने वाले जीवाणु एवं फफूंदी, जैविक पदार्थ जैसे कूड़ा, कचरा एवं फसल के अवशेष का विघटन करके पोषक तत्वों से भरपूर खाद बना देते हैं। इस क्रिया को कंपोस्ट निर्माण और बने हुए पदार्थ को कंपोस्ट कहते हैं।

इस कंपोस्ट में उपस्थित प्रमुख एवं लघु पोषक तत्व पादप वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं।

कंपोस्ट निर्माण की विधियां

(अ) गड्ढा विधि : गड्ढा बनाने के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो भूमि की सतह से थोड़ा ऊंचा हो जिससे बरसात का पानी इकट्ठा न हो पाए। इसके साथ ही साथ गड्ढा जहां यह जानवर पाले पाले जाते हों उसके पास भी हो। इस स्थान पर 3 मीटर लंबे, 2 मीटर चौड़े और 1 मीटर गहरे गड्ढे खोद लेने चाहिए। इन गडढों में भूसा, फसल व सब्जियों के अवशेष और अन्य जैविक पदार्थों की परत भर दी जाती हैं। इस परत के ऊपर 4.5 किलो गोबर, 4.5 लिटर जानवर की पेशाब से भीगी मिट्टी तथा 4.5 किलो पर्याप्त मात्रा में पानी छिड़क दिया जाता है। इस प्रकार एक के बाद एक परत जैविक पदार्थों का मिश्रण बिछा कर गड्ढे को एक सप्ताह के अंतराल में भर देना चाहिए। इसके बाद 15, 30 और 60 दिन के अंतराल से गड्ढे के अंदर भरे हुए जैविक पदार्थ को पलटना चाहिए। इस प्रकार से तीन माह में कंपोस्ट खाद तैयार हो जाती है। इस खाद को खेत में फैलाकर और हल चलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिए।

(ब) नाडेप विधि :– इस विधि में 3.5 मीटर लंबा, 2 मीटर चौड़ा और 1 मीटर ऊंचा ईंट का ढांचा बनाया जाता है। यह ढांचा सीमेंट व चूने से इस प्रकार बनाया जाता है कि दीवाल में हवा के संचार के लिए पर्याप्त छिद्र हों। इसकी दीवालों को गोबर से लेप दिया जाता है। फिर इस ढांचे को कृषि से उत्पन्न जैविक पदार्थ और मिट्टी की पर्तें बनाकर तब तक भरते हैं जब तक यह ऊपर तक न भर जाए। फिर ऊपर की परत को गोबर की लुगदी से लेप देते हैं। इस ढांचे में लगभग 13.5 क्विंटल जैविक पदार्थ और 90 किलो गोबर व मिट्टी और 1350 लिटर पानी भरने की क्षमता होती है। गोबर की लुगदी बनाने के लिए 4 किलो गोबर को 150 लिटर पानी में घोलते हैं। प्रत्येक जैविक पदार्थ की परत के बाद इस लुगदी को छिड़कते हैं, जिसके

ऊपर 50–60 किलो मिट्टी को फैलाते हैं उसके ऊपर पानी छिड़का जाता है ताकि फैलाई गई मिट्टी जैविक पदार्थ के छिद्रों में प्रवेश कर ले। इस प्रकार कृषि जैविक पदार्थ की 12–14 परतें बिछाते हैं। फिर ढांचे के ऊपर 5–6 सेंमी. मोटी चिकनी मिट्टी व गोबर का मिश्रण लेप देते है। इसके बाद जैविक पदार्थ को नम रखने के लिए आवश्यकता पड़ने पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। इस प्रकार से 100–120 दिन में कंपोस्ट खेत में प्रयोग करने योग्य तैयार हो जाती हैं। इस कंपोस्ट का रंग भूरा होता है और यह गंध रहित होती है।

वर्मीकंपोस्ट :– खरपतवार एवं गोबर से केंचुए द्वारा जो जैविक खाद बनती है उसको वर्मीकंपोस्ट कहते हैं। इसके बनाने की विधि को अंग्रेजी में वर्मी कंपोस्टिंग कहते हैं। केंचुए भूमि के उपजाऊपन को स्थिर रखने में एक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। ये जैविक पदार्थ को सड़ाकर खाद में परिवर्तित कर देते हैं। ये लगभग 20 से 100 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति वर्ष फसल को प्रदान करते हैं। इसके साथ ही साथ ये कुछ लवण व पौधों की वृद्धि के लिए हॉरमोन की उपलब्ध कराते हैं। ये लाभदायक सूक्ष्मजीव की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करते हैं।

केंचुए कुछ सूक्ष्म जीवों को भोजन के रूप में खाते हैं। अतः जितनी अधिक मात्रा में सूक्ष्म जीव जैविक पदार्थ में उपलब्ध होंगे उतनी ही अधिक केंचुओं की संख्या एवं भार होगा। यह भूमि में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ाते हैं जिससे मिट्टी में पनपने वाले सूक्ष्म जीवों की वृद्धि अधिक होती है। यह सूक्ष्म जीव वायुमंडलीय नाइट्रोजन का संचय करते हैं। यह एंजायम एवं एंटीबायोटिक पदार्थ पौधों के विकास के लिए उत्पन्न करते हैं एवं ये परजीवी सूत्रकृमि को भी नष्ट करके फसल की वृद्धि में सहायता करते हैं।

यह अनुमान लगाया गया है कि एक ग्राम का केंचुआ एक दिन में एक ग्राम वर्मीकंपोस्ट बनाता है। एक वर्गमीटर जगह में 1000 कंचुए एक दिन में 1 किलो वर्मीकंपोस्ट बनाते हैं। इस प्रकार से 80–90 दिन में पूरा एक वर्गमीटर का क्षेत्र वर्मी कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाता है और इस प्रकार से केंचुओं की संख्या भी कई गुना बढ़ जाती है।

वर्मीकंपोस्ट बनाने की विधि

(अ) भूमि की सतह पर : छायादार एवं ऊंचे स्थान पर या छप्पर के नीचे पक्की सतह पर या भूमि की सतह पर पालीथिन बिछाकर वर्मीकंपोस्ट बनाई जाती है। इसके लिए गोबर, सूखी पत्तियां, फल, सब्जियां और खरपतवार को एकत्रित करके 3×1×1.5 मीटर के आकार के ढेर बना लिए जाते हैं। इस ढेर में प्रतिदिन पानी का छिड़काव करते रहते हैं जिससे ढेर के पदार्थ मुलायम हो जाएं और केंचुओं को काम करने में मदद कर सकें।

जब सड़ाव प्रारंभ हो जाए उस समय ढेर पर 10 किलो लाल केंचुए (रेड वर्म) समान रूप से बिछा दें। ये केंचुए कुछ समय बाद ढेर के अंदर चले जाते हैं। सात से दस दिन में ढेर को पलट देते हैं जिससे ढेर में वायु का संचार सुचारु रूप से हो सके। केंचुओं की 1 किलो की मात्रा से प्रतिदिन 1 किलो खाद बनती है। 45–50 दिन में संपूर्ण ढेर खाद में बदल जाता है। खाद को 2 मि.मी. की छलनी से छानकर अलग कर लिया जाता है और छलनी में बचे केंचुए और उनके अंडों को नए बने जैविक पदार्थ व गोबर के ढेर में डाल देते हैं जिससे खाद बनने की प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है।

(ब) गड्ढा बनाकर : इस विधि में 3.5×1.5 मीटर आकार का एक गड्ढा किसी ऊंचे स्थान पर ईंट द्वारा बनाया जाता है। इस की तलहटी में 3.5 से.मी. मोटी कंकड़ या ईंट की परत बिछाकर इसके ऊपर इसी मोटाई की मोरम की परत बिछा देते हैं, जिसके ऊपर मिट्टी की एक पतली परत बिछा देते हैं। इस पर पानी छिड़क कर 100–150 केंचुए रखकर गोबर की परत से उनको ढक देते हैं। उसके ऊपर पौधों के जीवांश की 15–20 से.मी. मोटी परत बिछा देते हैं। इसी प्रकार 20–25 दिन के अंतराल से उपरोक्त प्रक्रिया तक तक

जारी रखते हैं जब तक गड्ढा ऊपर तक न भर जाए। इस प्रकार से 40–50 दिन में खाद बनकर तैयार हो जाती है। इस खाद के प्रयोग के लिए 5 कि.ग्रा. प्रति पेड़, खेतों में 20–30 क्विंटल/हेक्टेयर तथा गमलों में 100 ग्राम प्रति गमला की मात्रा आवश्यक होती है।

वर्मीवाश : केंचुए द्वारा विष्ठा के रूप में बनाए गए पदार्थ को वर्मीवाश कहते हैं। इसमें मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व तथा हॉर्मोन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह तरल के रूप में पर्णीय छिड़काव के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है।

इसको बनाने के लिए एक प्लास्टिक का ड्रम लेते हैं जिसका ऊपर का मुंह खुला होता है और नीचे की सतह में एक टोंटी लगी होती है। सबसे नीचे 7–10 से. मी. मिट्टी की पर्त बिछाकर उसके ऊपर इसी मोटाई की मोरम की परत बिछा दी जाती है। इसके बाद मिट्टी की पतली पर्त बिछाकर एंजाइम एवं एनिसिक प्रकार के केंचुए फैला देते हैं। इनके ऊपर 10–15 से. मी. सूखी घास, पुआल, सब्जियों की पत्तियां सड़े–गले फल, गोबर आदि को परत बिछा दी जाती है। फिर इनके ऊपर मिट्टी की पतली परत बिछा दी जाती है जिस पर हल्के पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। लगभग 15–20 दिन बाद वर्मीवाश बनना आरंभ हो जाती है। इस बीच ड्रम की टोंटी खुली रखते हैं और वर्मीवाश को एकत्रित करने के लिए एक बाल्टी रख दी जाती है जिसमें वर्मीवाश एकत्र होती रहती है। प्रायः प्रतिदिन 3 लिटर वर्मीवाश तैयार हो जाती है। इस वर्मीवाश की 1 लिटर मात्रा को 7 मीटर पानी में मिलाकर पौधों पर पर्णीय छिड़काव किया जाता है।

हरी खाद : भूमि में हरे पत्तीदार पौधों को छोटी अवस्था में दबाकर खाद बनाने को हरी खाद बनाना या ग्रीन मैन्योरिंग कहते हैं। इस खाद से भूमि की गुणवत्ता निम्नलिखित तरह से बढ़ती है :

(1) यह भूमि में कार्बनिक तत्व की वृद्धि करती है।
(2) यह पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने में सहायता करती है।
(3) यह मिट्टी को भुरभुरी बनाती है।
(4) यह खरपतवार की वृद्धि को रोकती है।
(5) इससे कीट नियंत्रण में भी सहायता मिलती है।
(6) यह भूमि में जैविक क्रियाओं में वृद्धि करती है।

हरी खाद बनाने की विधि :– हरी खाद की फसलें या तो मुख्य फसल के पहले या साथ–साथ उगाई जाती हैं। इसके लिए दाल वाली फसलें अधिक उपयुक्त रहती हैं क्योंकि इनसे भूमि को नाइट्रोजन अधिक मात्रा में प्राप्त होती है। दो दाल वाली फसलें जो हरी खाद के लिए प्रयोग की जाती हैं, वे हैं ढ़ेंचा, सनई, नील, मूंग, उर्द, लोबिया, सुबबूल आदि। हरी खाद के लिए उगाई गई फसल को मुख्य फसल बोने के 2–3 सप्ताह पहले मिट्टी में पलट दिया जाता है। इनको फूल आने से पहले पलटना चाहिए। पेड़ों की टहनियों और पत्तियों को भी काटकर मिट्टी में दबाया जा सकता है। जब तक पलटी हुई फसल पूर्ण रूप से न सड़ जाए, फसल को नहीं बोना चाहिए, अन्यथा दीमक का आक्रमण होने की आशंका रहती है। सड़ने की प्रक्रिया शीघ्र करने के लिए खेत में 5 किलो/हे० की दर से यूरिया का छिड़काव करना चाहिए।

फसल चक्र का अपनाना :– फसल चक्र को अपनाने से भूमि की उर्वरता स्थिर रहती है और यह खरपतवार, कीटों व बीमारियों की तीव्रता को कम करता है। झकड़ा जड़ वाली फसल के बाद मूसला जड़वाली फसल को बोना चाहिए। प्रत्येक खेत में फसल चक्र अपनाते समय दलहनी फसलों का समावेश करना अत्यंत आवश्यक होता है। उनसे न केवल जीवांश की वृद्धि होती है बल्कि वायुमंडलीय नाइट्रोजन का संचय भी होता है।

जैविक उर्वरकों का प्रयोग :– इनको अंग्रेजी में बायोफर्टिलाइज़र कहते हैं जोकि जैविक खेती का एक प्रमुख अंग हैं। इसमें विशेष सूक्ष्मजीव महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनसे वायुमंडल से भूमि में व पौधों में नाइट्रोजन संचय होती है। फॉस्फोरस को घुलनशील करके पौधों

को उपलब्ध कराते हैं एवं सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक, तांबा आदि को पौधों के अंग में समावेश करते हैं। हॉर्मोन, एन्जाइम, विटामिन व ऐमीनो अम्ल का उत्पादन करके पौधों के विकास में सहायता करते हैं और बीमारी पैदा करने वाली फफूंदी का नियंत्रण करते हैं। इनका संक्षेप में विवरण नीचे दिया गया है :

रायजोबियम : ये जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों में प्रवेश करके वायुमंडल से नाइट्रोजन का संचय करते हैं। प्रत्येक दलहनी फसल के लिए अलग–अलग रायजोबियम कल्चर या टीका होता है। इससे बीज को शोधित करने से दलहनी फसल की वृद्धि अच्छी होती है और भूमि में 30–50 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर संचित करते हैं जोकि अगली फसल को उपलब्ध होती है। ये कल्चर कृषि विश्वविद्यालय और कृषि विभाग की प्रयोगशालाओं से मामूली कीमत पर उपलब्ध होते हैं और उनको प्रयोग करने की विधि पर साहित्य भी प्राप्त होता है।

ऐजोटोबैक्टर : इस बायोफर्टिलायजर का प्रयोग गेहूं, मक्का, सरसों कपास और आलू में किया जाता है। इससे वायुमंडलीय नाइट्रोजन जड़ में एकत्रित न होकर भूमि में संचित होती है जो उपरोक्त फसलों को उपलब्ध होती है। ऐजोटोबैक्टर भी कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विभाग की प्रयोगशालाओं से प्राप्त किया जा सकता है।

एजोस्पायरलम : इसका प्रयोग ज्वार, बाजरा, गन्ना, मक्का और गेहूं में किया जाता है। यह भी इन फसलों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराता है।

नील हरित शैवाल : इसको 'ब्ल्यू ग्रीन एल्गी' या 'बी.जी.ए.' भी कहते हैं। इसका धान में प्रयोग किया जाता है। यह 20–30 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर धान की फसल को उपलब्ध कराता है। यह जैविक उर्वरक भी कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विभाग की प्रयोगशालाओं से मामूली कीमत पर प्राप्त होता है।

आजौला : यह पानी में उगता है और 60 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से वायुमंडल से एकत्रित करता है। इसके साथ ही साथ यह भूमि को कार्बनिक पदार्थ भी उपलब्ध कराता है।

पी.एस.एम (फॉस्फेट सॉल्यू विलाइजिंग माइक्रो ऑर्गेनिज़्म) : ये सूक्ष्म जीव होते हैं और अकार्बनिक फास्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। जब इनको शैल फॉस्फेट के साथ प्रयोग करते हैं तो ये फसल की फॉस्फोरस की आवश्यकता 50 प्रतिशत तक पूरी करते हैं।

वॉम : इनको **वैसीकुलर अवारकुलर माइकोराइज़ी** भी कहते हैं जोकि फफूंदी का एक समूह होता है। फसलों के साथ उगने से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है जोकि फॉस्फोरस, जिंक, ताँबा और गंधक की उपलब्धता के कारण होती है। वॉम की वृद्धि फसलों की जड़ों में उन भूमियों में, जिनमें क्रि फास्फोरस कम होता है, अधिक होती है।

खरपतवार नियंत्रण :– जैविक खेती में खरपतवार का नियंत्रण रासायनिक खरपतवारनाशक दवाओं से नहीं किया जाता है। निम्नलिखित विधियों द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण किया जाता है :

(1) आच्छादित फसलों द्वारा :– ऊंची बढ़ने वाली फसलों को उगाने से खरपतवारों को पर्याप्त सूर्य की रोशनी नहीं मिलती है जिससे उनमें बीज नहीं बन पाते हैं। इसके अतिरिक्त ये फसलें भूमि में पर्याप्त कार्बन पदार्थ भी प्रदान करती है।

(3) फसल की बुवाई करने से पहले खेत में सिंचाई करने से खरपतवारों के बीज अंकुरित हो जाते हैं। इस स्थिति में खेत की जुताई करने पर ये शैशवावस्था में ही नष्ट हो जाते हैं।

(4) ड्रिप सिंचाई से पानी फसल के पास ही पहुंचता है। इससे न केवल पानी की बचत होती है बल्कि खाली स्थान में उगने वाले खरपतवारों को पानी नहीं मिलता और उनकी बढ़ोतरी नहीं होती है।

(5) फसल चक्र अपनाकर।

(6) खेत में फसल के पौधों को समुचित संख्या में बनाए रखना।

(7) आवश्यकता पड़ने पर व गुड़ाई व निराई करके खरपतवारों पर नियंत्रण पाना।

(8) ग्रीष्मकालीन जुताई करना।

फीरोमोन ट्रैप : कीटों के प्रबंधन के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह किस समय अधिक मात्रा में फसल पर आक्रमण करते हैं। फीरोमोन ट्रैप एक सरल आकृति है जिससे सेक्स फीरोमोन रख दिए जाते हैं जिससे नरकीट आकर्षित होकर एक थैले में एकत्रित हो जाते हैं। इससे नर और मादा के अनुपात में विषमता आ जाती है और कीटों की संख्या बढ़ने में रोक लग जाती है।

फीरोमोन ट्रैप से कीट का नियंत्रण भी होता है। विशेष तौर पर धान में तना बेधक कीट के लिए सेक्स फीरोमोन बाजार में उपलब्ध है जिनके प्रयोग से कीट प्रबंधन में सहायता मिलती है।

कीट अवरोधी जातियों को उगाने से कीट–नियंत्रण के लिए रासायनिक दवाओं की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अभी हाल में कपास व सब्जियों में ट्रांसजीनिक जातियां विकसित हुई हैं जिनमें कीटविशेष के प्रति अवरोधी जीन जीवाणुओं (बैक्टीरिया) से स्थानान्तरित की गई है। इनको उगाने से कीटनाशी दवाओं की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

एन. पी. वी. जिसे **न्यूक्लियर पॉली हैड्रोसिस वायरस** भी कहते हैं, चनाफली बेधक कीट का नियंत्रण करती है। यह विषाणु चनाफली बेधक कीट की सूंड़ी पर प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। विषाणु ग्रसित 10–15 सूंड़ियों को इकट्ठा कर लिया जाता है। उसमें थोड़ा पानी मिलाकर खरल मूसल से पीसकर मलमल के कपड़े से छान लिया जाता है। यह तरल पदार्थ फसल पर पानी में मिलाकर छिड़कने से इस कीट पर नियंत्रण पाया जा सकता है। एक हेक्टेयर के लिए 250 सूंड़ियों से बना तरल घोल पर्याप्त होता है।

नीम में कीटनाशी गुण पाए जाते हैं। निंबोलियों को खरल या ओखली में खूब बारीक–बारीक कूट लिया जाता है फिर बारीक कपड़े की पोटली बनाकर शाम को पानी में भिगा दिया जाता है। सुबह पोटली को दबा कर सफेद दूधिया रस निकालते हैं। इस घोल में 1 प्रतिशत साबुन मिलाकर फसल पर 5 प्रतिशत बिनौले के सत के छिड़काव से यह हानिकारक कीटों को नष्ट करता है परंतु लाभदायक कीटों के लिए सुरक्षित है।

हानिकारक कीटों पर नियंत्रण प्रयोगशाला जनित परजीवी एवं परभक्षी कीटों को निर्धारित मात्रा में खेत में छोड़ने से पाया जा सकता है। इनमें ट्रायकाग्रामा की कई जातियाँ हैं जो कि ज्वार, मक्का, गन्ना, टमाटर, कपास व सब्जियों के कीटों को नुकसान पहुंचाकर फसल को सुरक्षित रखती हैं।

रोग नियंत्रण

(1) रोग–रोधी जातियों को उगाकर।

(2) एस्परजिलस नाइजर (ए.एन 27), जिसका व्यावसायिक नाम कालीसोना है के प्रयोग से भूमि जनित रोगों जैसे उकठा, चारकोल सड़न, डैम्पिंग ऑफ, शीथ ब्लाइट एवं स्टॉक रॉट पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

(3) भूमि का सूर्य की धूप से तपना।

(4) नीम, करंज और महुआ की खली को भूमि में मिलाने से ये हानिकारक निमाटोड को नष्ट करते हैं और भूमि में नाइट्रोजन भी उपलब्ध कराते हैं।

(5) नीम व लहसुन के घोल के प्रयोग से हानिकारक कीट नष्ट हो जाते हैं।

(6) ट्रायकोडरमा के प्रयोग से उकठा रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

ooo

5

आवर्त सारणी एवं नवीन तत्वों की खोज

डॉ. एन. के. बोहरा

अनेक वस्तुओं में से समान गुणों की वस्तुओं को छांटकर एक स्थान पर व्यवस्थित करना वर्गीकरण कहलाता है। इसी प्रकार जब वैज्ञानिकों ने अनेक तत्वों की खोज कर ली तो उनके रासायनिक एवं भौतिक गुणों के आधार पर वर्गीकरण की आवश्यकता महसूस हुई जिससे उनके यौगिकों के गुणों का व्यवस्थित अध्ययन कम समय में एवं सरलता से किया जा सके।

तत्वों के वर्गीकरण हेतु अनेक वैज्ञानिकों ने प्रयास किए। सर्वप्रथम डोबरीनर ने त्रिक नियम (Law of Triads) दिया जिसमें उन्होंने तत्वों की तीन–तीन श्रेणियां बनाईं जिसमें मध्यवर्ती तत्व का भार प्रथम एवं तृतीय का औसत था, परंतु डोबरीनर सभी ज्ञात तत्वों का वर्गीकरण इस आधार पर नहीं कर सके।

इसके पश्चात् न्यूलैंड नामक वैज्ञानिक ने अष्टक नियम (Law of Octave) दिया। इसके अनुसार तत्वों को बढ़ते हुए परमाणु भारों के क्रम में रखने पर हर आठवां तत्व, पहले तत्व से गुणों में समानता प्रदर्शित करता है। उन्होंने इस हेतु संगीत के सुरों **सा, रे, ग, म, प, ध, नि** का उदाहरण देते हुए इन्हें समझाया, परन्तु यह नियम भी सभी ज्ञान तत्वों पर लागू नहीं हो पाया।

इन सभी वर्गीकरणों में सर्वमान्य वर्गीकरण सर्वप्रथम मेन्डेलीफ का माना गया। मेन्डेलीफ के अनुसार यदि समस्त तत्वों को उनके बढ़ते हुए परमाणु भारों के क्रम में व्यवस्थित किया जाए तो एक निश्चित अंतराल के बाद तत्वों के गुणों में पुनरावृत्ति होती है। मेन्डेलीफ ने एक नियम दिया जिसके अनुसार **तत्वों के भौतिक एवं रासायनिक गुण उनके परमाणु भारों के आवर्ती फलन होते हैं।** मेन्डेलीफ ने तत्वों को आठ उर्ध्वाधर स्तंभों (Vertical Columns), जिन्हें वर्ग कहा गया, में बांटा, जिसके बाद निष्क्रिय गैसों के रूप में शून्य वर्ग जोड़कर कुल 9 वर्ग बनाए। वर्गों को I-III तक नाम दिए तथा उन्हें दो उपवर्गों में बांटा परंतु शून्य वर्ग को विभाजित नहीं किया गया। इसी प्रकार क्षैतिज पक्तियों को आवर्त नाम दिया गया तथा 7 आवर्त बनाए गए।

समान गुणों वाले तत्वों को भिन्न वर्गों में रखा गया है। कॉपर (Cu) व मरकरी (Hg) को तथा सोना (Au) व प्लेटिनम (Pt) को समान गुणों के बावजूद अलग–अलग रखा गया है। इसी प्रकार बेरियम (Ba), लैड (Pb) को भी भिन्न–भिन्न वर्गों में रखा गया है। असमान गुणों वाले तत्वों को एक ही वर्ग में रखा गया। मुद्रा धातुओं (Cu, Ag, Au) एवं क्षार धातुओं (Li, Na, K, Pb, C) के गुण असमान होने के बावजूद उन्हें एक ही वर्ग में रखा गया है।

हाइड्रोजन की विवादास्पद स्थिति : इसके कुछ गुण IA की क्षार धातुओं से, कुछ उपवर्ग VIIA के हैलोजन से मिलते हैं। दोनों में इसे रखना असंभव है। इसी प्रकार आवर्त सारणी में लैंथेनाइड व एक्टिनाइड (La & Ac) की उपयुक्त स्थिति नहीं दर्शाई गई है।

समस्थानिकों की स्थिति : आवर्त सारणी में परमाणु भार के आधार पर समस्थानिकों को पृथक्–पृथक् स्थान मिलने चाहिए थे परंतु सारणी में इनको कोई स्थान नहीं दिया गया है।

उत्कृष्ट गैसों की स्थिति सही नहीं : मेन्डेलीफ की आवर्त सारणी के प्रथम आवर्त में मात्र 2 तथा दूसरे एवं तीसरे में 8–8, चौथे एवं पांचवे में 18–18 तत्व थे। छठे आवर्त में क्र.सं. 59–73 तक लैन्थेनाइड तत्वों की अलग सीरीज बनाकर कुल 18 तत्व शामिल किए गए। सातवां आवर्त अपूर्ण आवर्त था जिसमें भविष्य में खोजे जाने वाले तत्वों के लिए भी रिक्त स्थान था तथा ऐक्टिनाइड श्रेणी के 14 तत्व भी शामिल किए गए हैं।

वस्तुतः मेन्डेलीफ की आवर्त सारणी से नए तत्वों की खोज को प्रोत्साहन मिला। उन्होंने अज्ञात तत्वों के लिए रिक्त स्थान छोड़ते हुए उनके गुणों की भी भविष्यवाणी कर दी थी। इससे तत्वों की खोज में बहुत सहायता मिली। मेन्डेलीफ ने एका–सिलिकन (बाद में जर्मेनियम), एका–बोरान (बाद में स्कैन्डियम) एवं एका–ऐल्युमिनियम (बाद में गैलियम) के गुणों की उनके निकटवर्ती तत्वों के गुणों के आधार पर पहले से ही भविष्यवाणी कर दी थी। इसी प्रकार मेन्डेलीफ की सारणी के आधार पर तत्वों के परमाणु भारों का आकलन भी तत्वों के तुल्यांकी भार के प्रायोगिक मान को ज्ञात कर उसकी संयोजकता से गुणा कर ज्ञात किया जा सकता था। तत्वों की संयोजकता उसकी वर्ग संख्या के बराबर होती थी।

इसके विपरीत मेन्डेलीफ की आवर्त सारणी में निम्नांकित दोष थे –

1. कुछ स्थानों पर परमाणु भारों के आरोही क्रम का पालन नहीं था। आर्गन (परमाणु भार 39.94) को पोटेशियम (परमाणु भार 39.1) से, कोबाल्ट (परमाणु भार 58.94) को निकेल (परमाणु भार 58.69) से तथा टेल्यूशियम (परमाणु भार 127.61) को आयोडीन (परमाणु भार 126.62) से पहले रखा गया जो नियम विरुद्ध था।

2. इसके पश्चात् 1912 में रसायनविज्ञानी मोसेल ने परमाणु क्रमांक को परमाणु भार की अपेक्षा तत्वों का मौलिक गुण माना। मोसेल के अनुसार "तत्वों के भौतिक एवं रासायनिक गुण उनके परमाणु क्रमांकों के आवर्ती फलन होते हैं।" इसी को आधुनिक आवर्त सारणी कहा गया। आधुनिक आवर्त सारणी में 18 वर्ग हैं जिन्हें IA से VIIA & B, VIII (3 भागों में) तथा शून्य वर्ग में रखा गया है। इसकी क्षैतिज पक्तियों (आवर्त) की संख्या 7 ही रखी गई है। अधिक धात्विक तत्वों को सारणी के बाईं ओर एवं अधात्विक को दाईं ओर रखा गया है। B, Si, Ag, Te & Al के नीचे सीढ़ीनुमा रेखा बनाकर धातु/अधातु को विभाजित किया गया है।

3. हाइड्रोजन की स्थिति इस सारणी में भी स्पष्ट नहीं है। लैंथेनाइड व एक्टिनाइड को मुख्य सारणी में समायोजित करना संभव नहीं है तथा कुछ तत्वों यथा Be, Pb तथा Cu व Hg को पृथक्–पृथक् रखा गया है जो उचित नहीं है।

आधुनिक आवर्त सारणी : इसमें आई.यू.पी.ए.सी. (अंतर्राष्ट्रीय सैद्धांतिक एवं अनुप्रयुक्त रसायनविज्ञान संघ) में दिए सुझाव के अनुसार दीर्घ आवर्त सारणी में वर्गों का A व B उपवर्गो में विभाजन समाप्त कर दिया गया है और VIII वर्ग को तीन पृथक् भागों में बांटा गया है। इसी प्रकार वर्गों को 1 से 18 तक वर्गीकृत किया गया है।

100 से अधिक परमाणु क्रमांक वाले तत्वों का IUPAC में नामकरण : परमाणु क्रमांक 103 के बाद के खोजे गए तत्वों के नामकरण हेतु एक नई पद्धति का सुझाव दिया गया। इसके अनुसार परमाणु क्रमांक तीन अंको में है अतः इनके आधार पर तत्वों के प्रतीक तीन अक्षरों में एवं नाम तीन शब्दों में होने चाहिए। प्रत्येक अंक के लिए एक मूल नाम (Root name) बनाया गया जो कि निम्नांकित है –

अंक	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9
मूल नाम	निल	अन	बाई	ट्राई	क्वाड	पेन्ट	हेक्स	हेप्ट	ऑक्ट	ऐन

तत्व का नाम लिखने के लिए तीन अंकों के मूल नाम क्रम से लिखते हैं और अंतिम अंक के मूल नाम में परसर्ग (Suffix) – इयम (ium) लगा देते हैं। यदि नाम के अंत में ena आता है तो आई हटाकर तथा बाई या ट्राई हटा कर ium जोड़ दिया जाता है। नाम के प्रतीक बनाने के लिए मूल के तीनों नामों के प्रथम अक्षर लिखे जाते है।

101	अन–निल–अनियम	unn
102	अन–निल–बाइयम	unb
103	अन–निल–ट्राइयम	unt
104	अन–निल–क्वाडियम	unq
105	अन–निल–पेन्टियम	unp
106	अन–निल–हेक्सियम	unh
107	अन–निल–सेप्टियम	uns
108	अन–निल–ऑक्टियम	uno
109	अन–निल–ऐनियम	une
111	अन–निल–निलियम	uun

वस्तुतः तत्व का पूरा नाम एक ही शब्द में लिखा जाता है। तीनों नाम के मध्य डैश लगाया जाता है।

आवर्त सारणी के 112वें तत्व की खोज – आवर्त सारणी के 112वें तत्व की खोज सेंटर फॉर हैवी आयन रिसर्च, जी.एस.आई., डर्मस्टेन्ड द्वारा कर ली गई है जिसे आई.पी.यू.ए.सी. ने भी मान्यता दे दी है तथा इसकी खोजकर्ता टीम के प्रोफेसर सिगार्ड हॉफमैन को इस संबंध में आधिकारिक पत्र भी जारी कर दिया है। यह नया तत्व हाइड्रोजन से लगभग 277 गुणा भारी है तथा आधुनिक आवर्तसारणी का सबसे भारी तत्व है।

उल्लेखनीय है कि प्रोफेसर सिगार्ड हॉफमैन की अंतरराष्ट्रीय टीम ने 1996 में ही तत्व संख्या 112 का प्रथम अणु जी.एस.आई. में बना लिया था। 2002 में उन्होंने दूसरी बार यह प्रयोग दोहराया। इसी प्रकार जापानी रिकेन डिस्कवरी रिसर्च इंस्टीट्यूट ने भी तत्व संख्या 112 को प्रयोगशाला में प्राप्त किया जो कि हॉफमैन टीम की खोज की पुष्टि थी। 112 संख्या वाले तत्व को बनाने हेतु वैज्ञानिकों ने आवेशित जिंक अणु को उत्तेजित किया इसके पश्चात् 120 मीटर लंबे अणु उत्तेजक द्वारा जी.एस.आई में लैड टारगेट पर फायर किया। जिंक एवं लैड केंद्रकों से संयोजन से नए तत्व का केंद्रक बनाया गया।

इसे वर्तमान में अस्थायी रूप से "तत्व संख्या 112" का नाम दिया गया है। यह परमाणु क्रमांक 30 (जिंक) एवं परमाणु क्रमांक 82 (लैड) की जोड़ संख्या 112 है। इसमें 112 इलेक्ट्रॉन हैं।

इस प्रकार आवर्त सारणी में नवीन तत्वों की खोज जारी है।

ooo

6

मिर्गी रोग : अंधविश्वास हटाएं, जागरूकता बढ़ाएं

डॉ. सोनल अग्रवाल

मिर्गी रोग अभी भी अनेक अंधविश्वासों से घिरा है जिसके कारण इसको छिपाने का प्रयास किया जाता है, उपचार नहीं कराया जाता, इन मरीजों का तिरस्कार किया जाता है, अवहेलना की जाती है, जिसके कारण इनके जीवन का हर पहलू प्रभावित होता है। इससे मन में हीन भावना हो सकती है। इनको पढ़ने स्कूल नहीं भेजा जाता, कार्य नहीं करने दिया जाता।

मिर्गी रोग से जुड़े अंधविश्वासों का खंडन करते हुए इस रोग से जुड़े तथ्य व सत्य निम्नांकित सारणी में दिए जा रहे हैं :–

अंधविश्वास	सत्यता
वंशानुगत रोग है।	मिर्गी अनेक प्रकार की होती है। कुछ प्रकार के रोग ही जीन में बदलाव के कारण होते हैं। अधिकांश में यह वंशानुगत नहीं होता। अतः मरीज के परिवार के साथ भेदभाव करना बेमानी है।
शादी के बाद ठीक हो जाता है।	अनेक परिवारों में मान्यता है कि शादी होने से रोग ठीक हो जाता है। लोग रोग छिपा कर शादी कर देते हैं, बाद में रोग का पता लगने पर गृह कलह होती है। रोग का उपचार शादी कतई नहीं है। रोग छिपा कर शादी न करें। अधिकांश मरीज विवाह के बाद सामान्य वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं, दायित्वों का पालन करते हैं। संतानें स्वस्थ व सामान्य होती है। गर्भावस्था में दवाएं बंद न करें।
तलाक मिल सकता है।	अनेक व्यक्ति तलाक के लिए मिर्गी रोग का सहारा लेते हैं। अब कानून के अनुसार यह रोग तलाक का आधार नहीं है।
महिला शिशु को अपना दूध नहीं पिला सकती है।	यदि रोगग्रस्त महिला शिशु का जन्म देती है, तो उसके द्वारा शिशु को अपना दूध पिलाने में कोई हर्ज नहीं है।
आघात के दौरान मरने का खतरा होता है।	आघात होने पर डरते हैं कि मौत हो सकती है। सामान्यतः ऐसा नहीं होता। लागातार लंबे समय तक आघात के दौरान बेहोशी की हालत में मरीज को पानी, जूस, ग्लूकोज, दवाई देने से यह श्वास की नली में पहुंच कर श्वास रुकने से मौत का खतरा बन सकता है।

अंधविश्वास	सत्यता
रोगी पागल, मंदबुद्धि है।	यह मनोरोग न होकर मस्तिष्क का एक रोग है। यह पागलपन कतई नहीं है। ज्यादातर मरीज मंदबुद्धि नहीं होते। अनेक महान विद्वान व्यक्ति रोगग्रस्त थे। वे आज भी हैं।
सामाजिक बहिष्कार के कारण रोग छिपाते हैं।	रोग छिपाने से मरीज हीन भावना ग्रस्त हो सकते हैं, उनका उपचार नियमित नहीं हो पाता, जिससे उनका वर्तमान व भविष्य अंधकारमय हो सकता है। रोग को छिपाने की आवश्यकता नहीं है। जरूरत है समाज में व्याप्त मिथ्या धारणाओं को दूर करने की।
मरीज को आग व पानी के निकट नहीं जाना चाहिए।	आघात कभी भी अचानक हो सकता है पर आघात के मध्य मरीज पूर्णतः सामान्य होते हैं। वे कोई भी कार्य निपुणता से कर सकते हैं। रसोई में जाने व पानी पीने से साधारणतः कोई खतरा नहीं होता। बेहतर होगा कि आग व पानी के पास होने पर आसपास कोई अन्य व्यक्ति हो जो आघात होने पर सहायता कर सके।
रोग भूत, प्रेत, शैतान, दुष्ट आत्मा के शरीर में प्रवेश करने व प्रकोप से होता है।	यह मस्तिष्क का रोग है, इनसे भूत का कोई संबंध नहीं है। ओझा–तांत्रिक के चक्कर में न आएं। ज्यादातर आघात कुछ मिनटों के लिए होते हैं। जब ओझा या तांत्रिक के द्वारा अजीबो–गरीब हरकत करने, धुंआ, लोबान, मंत्र बड़बड़ाने से होश आ जाता है, तो वे श्रेय ले लेते हैं। झॉड़–फूंक करने वाले मरीज को तरह–तरह की यातनाएं इस विश्वास के साथ देते हैं कि शरीर के अंदर प्रविष्ट दुरात्मा, मरीज का पीछा छोड़ देगी।
आघात देवी, हनुमान, भैरव के शरीर में प्रवेश करने के कारण होता है।	अनेक क्षेत्रों में आघात होने पर रोगी के शरीर में देवी, देवताओं व आलौकिक शक्ति का प्रवेश माना जाता है। रोगी की पूजा अर्चना की जाती है। उनसे समस्याओं के हल पूछे जाते हैं। यह अंधविश्वास है और जनता को बेवकूफ बनाना है।
पुराने जन्म के पापों के कारण।	यह मस्तिष्क का रोग है, पुराने जन्म से कोई संबंध नहीं होता।
रोग ग्रसित बच्चों को स्कूल नहीं भेजा जाता, पढ़ने से अटैक हो सकता है।	अनेक परिवार रोगी को पागल, मंद–बुद्धि समझ कर स्कूल नहीं भेजते, न ही कोई अन्य प्रशिक्षण दिलवाते हैं जिससे रोगी अनपढ रहते हैं व किसी अन्य कार्य में निपुण नहीं हो पाते। उन्हें दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है। इन बच्चों को स्कूल अवश्य भेजें। कुछ तो कुशाग्र बुद्धि होते हैं। स्कूल में भी इनको प्रवेश मिलना चाहिए, वहां भी भेदभाव नहीं होना चाहिए। आघात पढ़ने से नहीं होता।
यह अन्य रोगों से भिन्न है, तिरस्कार अनादर होता है।	मिर्गी ग्रस्त को भी सामान्य जीवन व्यतीत करने का अधिकार है। उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव, तिरस्कार, अनादर उचित नहीं हैं। इन बच्चों का अन्य बच्चों की तरह ही लालन–पालन होना चाहिए। कार्य से रोकने व टोकने से इनके मन में हीन भावना आ जाती है, वे अवसाद ग्रस्त हो सकते हैं और उनका रोग मुक्त होना दूभर हो जाता है।

अंधविश्वास	सत्यता
यह संक्रामक रोग है।	मिर्गी संक्रामक कतई नहीं होती। यह रोग किसी ज्ञात, अज्ञात कारण से मस्तिष्क में तेजी से विद्युत् तरंगें उत्पन्न हाने के कारण होता है। अतः इन मरीजों के साथ बैठने, खेलने, रहने–खाने व सोने से रोग फैलने का खतरा कतई नहीं होता।
जूते, चप्पल, गंदे मोजे सुंघाने से होश आ जाता है।	आघात प्रायः सीमित समय के लिए होते हैं। आघात के कुछ देर पश्चात् मरीज को स्वतः होश आ जाता है। बदबूदार जूते, चप्पल, गंदे मोजे सुंघाने का कोई औचित्य नहीं है।
नौकरी, पेशे में भेदभाव।	इनके साथ नौकरी में भेदभाव होता है, कोई भी इनको नौकरी नहीं देना चाहता। यह उचित नहीं है।
यह मानसिक रोग या मनोविकार है।	यह मानसिक रोग नहीं बल्कि मस्तिष्क का रोग है।
मरीज अव्यावहारिक होते है।	दूसरे इनसे दोस्ती करने, कार्य करवाने से कतराते व डरते हैं, जोकि उचित नहीं है।
सभी मरीज जो अचानक बेहोशी के कारण गिर पड़ते हैं, जिन्हें गश आता है, वे मिर्गी के मरीज है।	अचानक गश आना, बेहोशी अनेक कारणों से हो सकती है। सभी मिर्गी के मरीज नहीं होते।
रोग का निदान ई.ई.जी. या एम.आर.आई. से होता है।	सिर्फ इन्ही जांचों से रोग की पुष्टि नहीं होती है। प्रत्यक्षदर्शी के वर्णन करने से रोग का निदान आसानी से होता है।
वाहन चालन।	इन मरीजों को पहले ड्राइविंग लाइसेंस नहीं दिया जाता था, पर अब रोग नियंत्रण के पश्चात् अपना वाहन चलाने का लाइसेंस चिकित्सक के प्रमाण पत्र देने पर मिल सकता है।
जीवन बीमा।	इनका जीवन बीमा नहीं होता, इस कानून में भी बदलाव की आवश्यकता है।
कानून	देश के कानून में भी बदलाव की आवश्यकता है। इनको स्वस्थ व सामान्य व्यक्ति के अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

इपीलेप्सी (मिर्गी) रोग के प्रति समाज में व्याप्त अंधविश्वासों व मिथ्या धारणाओं को बदलने की नितांत आवश्यकता है। इनके साथ भेदभाव, तिरस्कार, अवहेलना कतई उचित नहीं है। इन्हें हर तरीके से सामान्य जीवनयापन का अधिकार होना चाहिए। कुछ प्रतिबंध जैसे खतरनाक कार्य करना, खतरनाक खेल, जिनमें खतरे की ज्यादा संभावना वाली स्थिति होती है, से बचना चाहिए। अंधविश्वास के कारण रोग का उपचार न करवाने से रोग लाइलाज हो सकता है। देश में शहरों के सभ्रांत वर्ग में कुछ बदलाव हो रहे हैं, पर देहातों और शहरों के निम्न, निम्न मध्यम वर्ग की सोच पूर्ववत् ही है, जिसके कारण इन मरीजों का जीवन नारकीय हो जाता है।

○○○

7

भोजन में प्रोटीन की महत्ता

डॉ. जे. एल. अग्रवाल

शरीर को स्वस्थ रखने, सक्रिय रखने और कार्य करने के लिए विटामिन, खनिज लवणों, जल तथा ऐंटी आक्सीडेंट की मात्रा पर्याप्त और संतुलित अनुपात में आवश्यकता होती है। प्रोटीन शब्द ग्रीक शब्द प्रोटियस (proteios) से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ 'सर्वप्रथम' या 'सबसे आवश्यक' होता है। नाम के अनुसार ही प्रोटीन शरीर के मूल आधार का निर्माण करती है।

प्रोटीन क्या है

मानव शरीर में इनके कुल वजन की लगभग 20 प्रतिशत विभिन्न किस्मों के प्रोटीन होते है। यह कोशिकाओं ऊतकों, हड्डियों, रक्त की आधारशिला है। प्रोटीन का निर्माण कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन से होता है। नाइट्रोजन, शर्करा वसा में नहीं सिर्फ प्रोटीन में ही होता है। औसतन प्रोटीन के भार का 16% अंश नाइट्रोजन होता है। कुछ प्रोटीन में सल्फर, फॉस्फोरस, लौह, ताम्र, आयोडीन इत्यादि तत्व भी होते हैं।

प्रोटीन की किस्में

प्रोटीन का आकार मोती की माला के सदृश्य होता है, जिसकी इकाई ऐमीनो अम्ल है। अनुमान है कि मानव शरीर में लगभग 50 हजार विभिन्न प्रोटीन होते हैं, पर अभी तक करीब 1 हजार प्रोटीनों की संरचना का पता है। ये सभी प्रोटीन 24 एमीनो अम्लों से बने हैं, इनमें से आठ ऐमीन अम्लों का निर्माण शरीर में नहीं हो पाता है, इनको अनिवार्य ऐमीनो अम्ल कहा जाता है क्योंकि इनकी भोजन में अपेक्षित मात्रा में उपस्थिति आवश्यक है। यदि किसी प्रोटीन में यह सभी आवश्यक ऐमीनो अम्ल होते हैं तो यह संपूर्ण या आदर्श प्रोटीन कहलाते हैं। अधिकांश जानवरों से प्राप्त प्रोटीन – गोश्त, चिकन, मछली, दूध, अंडे में संपूर्ण प्रोटीन होता है।

यदि किसी प्रोटीन में एक या अधिक आवश्यक ऐमीनो अम्ल नहीं होते तो उनको असंपूर्ण ऐमीनो अम्ल कहा जाता है। ज्यादातर वनस्पति स्रोतों से प्राप्त प्रोटीन (अनाजों, दालों, फलों, सब्जियों के प्रोटीन) में आवश्यक ऐमीनो अम्ल की कमी होती है, पर वनस्पति स्रोतों से प्राप्त प्रोटीन जानवरों के स्रोत से सस्ता और आसानी से उपलब्ध होता है।

कोई भी जानवर नए ऐमीनो अम्ल का निर्माण नहीं कर सकते, सभी जानवरों में ऐमीनो अम्ल का स्रोत वनस्पति होती है। वैज्ञानिकों ने परिकलन किया है कि जब 5 पौंड वनस्पति प्रोटीन का सेवन मानव करते हैं तो उनके शरीर में सिर्फ एक पौंड प्रोटीन का निर्माण होता है।

शाकाहारी भोज्य पदार्थों में मौजूद प्रोटीन असंपूर्ण होता है, पर यदि मिश्रित भोजन सेवन करते हैं तो एक खाद्य पदार्थ में अनुपस्थित एमीनो अम्ल की पूर्ति दूसरे खाद्य पदार्थ से हो जाती है। शरीर को सभी आवश्यक एमीनो अम्ल प्राप्त होते हैं। अनाजों में लाइसिन और प्रियोनिन एमीनो अम्ल कम होते हैं, जबकि दालों में मिथियोनिन की कमी होती है। यदि दाल–रोटी, मिस्सी रोटी, दाल–चावल, इडली, डोसा, खिचड़ी का सेवन किया जाए तो शरीर को संपूर्ण प्रोटीन प्राप्त होती है। अतः शाकाहारी भोजन को कम प्रोटीन युक्त, कम गुणवत्ता की प्रोटीन वाला भोजन कहना गलत है। बस मिश्रित भोजन का सेवन करें।

शरीर में प्रोटीन के मुख्य कार्य

प्रोटीन से शरीर के ऊतकों, कोशिकाओं की संरचनाओं का निर्माण होता है। यह शरीर के विकास, ऊतकों की सामान्य संरचना के लिए जरूरी होता है। टूट--फूट की मरम्मत करता है। कुछ प्रोटीन एंजाइम (विकर), हॉर्मोन, गुणसूत्रों, जीन के माध्यम से शरीर की गतिविधियों, कार्यों को नियंत्रित करते हैं।

प्रोटीन प्रतिरक्षी (ऐंटी बॉडीज) के रूप में शरीर को रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। रक्त और ऊतकों के मध्य द्रव में मौजूद प्रोटीन के दाब के कारण रक्त और ऊतकों के मध्य अन्य द्रवों और तत्वों का आवागमन होता है।

आवश्यकता होने पर प्रोटीन शरीर को ऊर्जा प्रदान कर सकते हैं। एक ग्राम प्रोटीन से लगभग 4 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है जोकि ग्लूकोज से प्राप्त ऊर्जा के बराबर है।

प्रोटीन ऊतकों की टूट–फूट की मरम्मत, नए ऊतको के निर्माण, घाव के भरने, बालों के बढ़ने और रक्त प्रोटीन, रक्त में ऑक्सीजन एवं अन्य तत्वों के वाहक के कार्य भी करता है।

प्रोटीन की उपलब्धता

जन साधारण में मान्यता है कि मांसाहारी भोज्य पदार्थों में प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है। यह धारणा कुछ हक तक ही सही है। सोयाबीन, मूंगफली तेल के बीजों के तेल निकालने के बाद बची खली में प्रोटीन की मात्रा मांसाहारी भोज्य पदार्थों से ज्यादा होती है।

ज्यादातर भारतीयों में प्रोटीन की आवश्यकता की पूर्ति मुख्यतः शाकाहारी स्रोत के भोज्य पदार्थो से होती है। देश की बड़ी आबादी शाकाहारी है पर कुछ शाकाहारी भी यदाकदा गोश्त, चिकन इत्यादि का सेवन करते हैं। शाकाहारी भोज्य पदार्थों दाल, मेवों में प्रोटीन की मात्रा गोश्त, चिकन के बराबर ही होती है।

कुछ मुख्य भोज्य पदार्थ में प्रोटीन की मात्रा (प्रति 100 ग्राम में)

खाद्य पदार्थ (100 ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	खाद्य पदार्थ (100 ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)
चावल	6.8	अंडा	13.3
गेहूँ	11.8	बकरे का गोश्त	20.0
मक्का	11.9	आलू	1.6
ज्वार	10.4	केला	1.0
बाजरा	11.6	राजमा	22.9
रागी	7.3	बादाम	20.8
चने की दाल	17.1	काजू	21.2
अरहर दाल	22.3	मूंगफली	25.2
सोयाबीन	43.3	सेव	0.2
दूध (भैंस)	6.5	पनीर	40.3
दूध (गाय)	4.1	संतरा	0.7
मछली	19.5	अमरूद	0.7
अंकुरित गेहूँ	29.2	उड़द दाल	24.0
चिकन	25.9		

शरीर में प्रोटीन की आवश्यकता

शरीर में ऊतकों में निरंतर टूट फूट होती रहती है, जिनकी मरम्मत के लिए प्रोटीन की नियमित आवश्यकता होती है। शरीर में कुल प्रोटीन की एक से दो प्रतिशत प्रोटीन की टूट फूट होती है और वयस्कों में इतने ही नए प्रोटीन निर्मित होते हैं जिससे ऊतक स्वस्थ रहते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर के विकास, नये ऊतको के निर्माण, घावों को भरने, बीमारी के दौरान ऊतकों के टूट की मरम्मत के लिए भी प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

प्रोटीन का वसा और ग्लूकोज की भांति शरीर में संचय नहीं होता। अतः प्रोटीन की नियमित रूप से भोजन में उपस्थिति आवश्यक है। प्रोटीन की आवश्यकता विभिन्न अवस्थाओं, परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। यह वजन, लिंग, मानसिक व शारीरिक रोग, संक्रमण, तनाव इत्यादि तथ्यों पर निर्भर करती है।

प्रोटीन की सर्वाधिक जरूरत, शिशुओं, बच्चों, किशोरावस्था, महिलाओं में गर्भावस्था और स्तनपान कराते समय होती है, क्योंकि इस दौरान नए ऊतकों का निर्माण और शारीरिक विकास के लिए अतिरिक्त मात्रा में प्रोटीन की जरूरत होती है।

स्वस्थ वयस्क पुरूषों को एक ग्राम प्रति किलोग्राम और महिलाओं को 0.9 ग्राम प्रति किलोग्राम वजन के हिसाब से प्रोटीन की जरूरत होती है। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् ने पुरुषों के लिए 60 ग्राम और महिलाओं के लिए 50 ग्राम प्रोटीन सेवन की संस्तुति की है।

गर्भावस्था में महिलाओं के ऊतकों के विकास और गर्भस्थ शिशु की जरूरत के लिए 15 ग्राम अतिरिक्त प्रोटीन तथा स्तनपान कराते समय प्रथम 6 माह में 25 ग्राम अतिरिक्त प्रोटीन की आवश्यकता होती है। दूध निर्माण में भी प्रोटीन आवश्यक है।

बच्चों, किशोरों की प्रोटीन की आवश्यकता वजन के अनुपात में वयस्कों से ज्यादा होती है। शारीरिक या मानसिक तनाव के दौरान ऊतकों की टूट फूट की मरम्मत के लिए अतिरिक्त प्रोटीन की जरूरत होती है। किसी भी रोग, ऑपरेशन के बाद, चलने के बाद और फैक्चर इत्यादि की स्थिति में भी प्रोटीन की जरूरत बढ़ जाती है। यदि कोई मरीज लंबे समय तक बिस्तर पर लेटे रहते है तो उनके शरीर से करीब 8 ग्राम अतिरिक्त प्रोटीन का ह्रास होता है जिसकी आपूर्ति आवश्यक है।

वृद्धावस्था में ऊतक तेजी से टूटने लगते हैं, उनकी प्रोटीन की जरूरत वयस्कों से थोड़ी ज्यादा हो जाती है। कैंसर, एड्स इत्यादि दीर्घकालीन रोगों में प्रोटीन की जरूरत बढ़ जाती है। यदि गुर्दो के रोगों के मरीज में पेशाब के साथ प्रोटीन निकलती है तो भी उनकी आवश्यकता बढ़ जाती है जबकि गुर्दे फेल होने पर भोजन में प्रोटीन की मात्रा कम करनी जरूरी होती है।

शरीर को प्रोटीन की आपूर्ति, मिश्रित प्रोटीन से होनी चाहिए, जिससे किसी आवश्यक एमीनो अम्ल की कमी न हो। शाकाहारियों को प्रतिदिन 200–300 मि. ली. दूध या दुग्ध पदार्थो का सेवन करना चाहिए जिससे यदि किसी आवश्यक एमीनो अम्ल की कमी है तो उसकी पूर्ति हो जाए।

शरीर में प्रोटीन की कमी का कैसे पता लगाएं

रक्त में एल्बूमिन, ट्रांसफेरिन प्रोटीन के स्तर को माप कर, शरीर में कुल नाइट्रोजन की मात्रा के माप से रक्त में प्रोटीन की कमी पता लग सकता है। सबसे सरल विधि रक्त में एल्बूमिन प्रोटीन की माप है। यदि रक्त में एल्बूमिन स्तर 3.5 ग्राम से कम है तो यह प्रोटीन की कमी का सूचक है।

प्रोटीन की कमी कैसे

देश में प्रोटीन की कमी विशेष कर बच्चों में गंभीर महती समस्या है। यदि भोजन में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन मौजूद नहीं है तो प्रोटीन की कमी हो सकती है। यदि भोजन में कुल कैलोरी कम होती है तो प्रोटीन का उपयोग ऊर्जा उत्पादन के लिए होने लगता है, और कमी हो सकती है। दस्त, पेचिश, आंतों में संक्रमण, केंचुएं इत्यादि कारणों से यदि आंतों से प्रोटीन का पाचन, अवशोषण समुचित रूप से नहीं हो तो भी प्रोटीन की कमी हो सकती है। यदि गुर्दे के रोगों के कारण शरीर से प्रोटीन का निष्कासन होता है या यकृत रोगों

विभिन्न परिस्थितियों में प्रोटीन की आवश्यकता

परिस्थिति	प्रतिदिन प्रोटीन का आवश्यकता
वयस्क पुरुष	60 ग्राम
वयस्क महिला	50 ग्राम
गर्भावस्था	+15 ग्राम (65 ग्राम)
स्तनपान कराते समय	+25 ग्राम (75 ग्राम)
0–3 माह शिशु	2.3 ग्राम प्रति किलो ग्राम वजन
3–6 माह शिशु	1.8 ग्राम प्रति किलो ग्राम वजन
6–9 माह शिशु	1.65 ग्राम प्रति किलो ग्राम वजन
9–12 माह शिशु	1.5 ग्राम प्रति किलो ग्राम वजन
1–3 वर्ष	22 ग्राम
4–6 वर्ष	30 ग्राम
7–9 वर्ष	41 ग्राम
10–12 वर्ष लड़के	54 ग्राम
लड़कियाँ	57 ग्राम
13–15 वर्ष युवक	70 ग्राम
युवतियाँ	65 ग्राम
16–18 वर्ष युवक	78 ग्राम
युवतियाँ	63 ग्राम

के कारण प्रोटीन का निर्माण नहीं हो पाता तो भी प्रोटीन की कमी हो सकती है।

प्रोटीन के कमी के स्पष्ट दुष्प्रभाव बच्चों में होते हैं। कमी के कारण शारीरिक और मानसिक विकास मंद पड़ जाता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने से विभिन्न संक्रामक रोग आसानी से होते हैं। बच्चों में कैलोरी की कमी से सूखा रोग हो सकता है, वजन अत्यधिक कम हो जाता है, ज्यादा प्रोटीन की कमी होने से बच्चों में 'क्वाशियोर्कोर' रोग होता है, इस दशा में शरीर में सूजन आ जाती है, त्वचा में धब्बे पड़ जाते हैं, संक्रमण हो जाता है, अन्य गंभीर समस्याएं होती है। मामूली कमी होने से बच्चों की विकास गति मंद हो जाती है, इनकी लंबाई कम हो सकती है। सक्रियता कम हो सकती है।

गर्भावस्था में महिलाओं में प्रोटीन की कमी से अपरिपक्व, कम वजन के, समय–पूर्व शिशु का जन्म होता है। माँ को प्रसव बाद दूध नहीं उतरता। महिला और शिशु को अरक्तता (ऐनीमिया) हो सकती है। यदि स्तनपान कराते समय महिलाओं में प्रोटीन की कमी होती है तो दूध जल्दी बंद हो जाता है, कमजोरी होती है।

वयस्कों में कमी होने से वे कमजोर हो जाते हैं, पेशियां पतली होने लगती हैं, शक्ति कम हो जाती है। मामूली कमी होने पर बाल झड़ते हैं, कार्य क्षमता कम हो जाती है, शीघ्र थकान हो जाती है। यदि बीमारी के दौरान पर्याप्त प्रोटीन की आपूर्ति नहीं होती तो स्वास्थ्य लाभ देरी से होता है, रोग गंभीर हो सकता है, बाल झड़ते है, नाखून, त्वचा कांतिहीन हो जाती है। शरीर में पानी जमा होने से शरीर में सूजन होती है, श्वास

फूलती है, शरीर कंकाल सदृश हो जाता है। बीमारी के पश्चात् भी प्रोटीन एवं अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है, यदि पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं करते तो पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में ज्यादा समय लगता है।

किशोरावस्था में सभी पोषक तत्वों, विशेष रूप से प्रोटीन की आवश्यकता ज्यादा होती है जिससे समुचित विकास हो सके। कमी होने से बुद्धि और विकास गति मंद हो जाती है या रुक जाती है, शक्ति, क्षमता कम हो जाती है, मानसिक विकास भी मंद गति से होता है, पढ़ाई में पिछड़ जाते है।

शरीर में जीन की गड़बड़ी या अन्य कारणों से किसी विशिष्ट प्रोटीन निर्माण में गड़बड़ी होने से विभिन्न रोग जैसे "सिकिल सेल", अरक्तता, थैलासीमिया, हीमोग्लोबिनो–पैथी, विभिन्न मेटाबोलिक रोग हो सकते है।

अत्याधिक प्रोटीन सेवन के दुष्प्रभाव

प्रोटीन के प्रचुर स्रोत ज्यादातार मंहगे होते हैं। जरूरत से ज्यादा प्रोटीन सेवन की शरीर के लिए कोई उपयोगिता नहीं होती, क्योंकि शरीर अतिरिक्त प्रोटीन को वसा, शर्कराओं के सदृश संचित नहीं कर सकता है। जरूरत से ज्यादा प्रोटीन सेवन करने से अतिरिक्त प्रोटीन का उपयोग ऊर्जा उत्पादन से होता है या अतिरिक्त प्रोटीन शरीर में वसा में बदल कर चर्बी के रूप में जमा हो जाता है, वजन बढ़ता है, मोटापा हो सकते हैं।

अत्याधिक प्रोटीन सेवन से उच्च रक्तदाब, जोड़ों के रोग, गाउट, बड़ी आंतों के कैंसर की संभावना बढ़ जाती है, गुर्दे क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

प्रोटीन संबंधित आवश्यक तथ्य

- चीनी, ग्लूकोज, घी, वनस्पति, तेल, मक्खन, वनस्पति घी को छोड़कर अन्य भोज्य पदार्थों में कम या ज्यादा मात्रा में प्रोटीन मौजूद होते हैं।
- प्रोटीन शरीर में ऊतकों, कोशिकाओं की संरचना का मूल आधार है।
- प्रोटीन का शरीर में संग्रहण नहीं होता, अतः इसका जरूरत भर मात्रा में भोजन में होना आवश्यक है।
- जानवरों से प्राप्त भोज्य पदार्थ या दुग्ध प्रोटीन संपूर्ण अच्छी गुणता का प्रोटीन होता है, जबकि अधिकांश शाकाहारी भोज्य पदार्थों का प्रोटीन असंपूर्ण प्रोटीन होता है। पर दालों–अनाजों के संतुलित संमिश्रण से शाकाहारी भोज्य पदार्थों के प्रोटीन की गुणता में सुधार हो जाता है। अतः मांसाहारियों का अपने को श्रेष्ठ ताकतवर मानना गलत है।
- जरूरत से ज्यादा प्रोटीन के सेवन से शरीर को कोई लाभ नहीं होता, बल्कि कभी–कभी यह हानिप्रद हो सकता है। विज्ञापनों में प्रोटीन ड्रिंक्स के विज्ञापन आते हैं। यह शरीर को शक्तिशाली, स्फूर्तिवान बनाने, तेजी से बच्चों के विकास का दावा करते हैं। अधिकांश हेल्थ/प्रोटीन पेय अत्यधिक मंहगे होते हैं। मेरे विचार से यह पैसे की बर्बादी है। यदि पर्याप्त मात्रा में संतुलित भोजन किया जाता है तो इनकी कतई आवश्यकता नहीं होती।
- हर व्यक्ति को जरूरत के अनुसार अच्छी गुणता के प्रोटीन की नियमित जरूरत होती है, जिससे शरीर हृष्ट–पुष्ट रहे और रोगों से बचाव हों। बच्चों, किशोरों का विकास हो। बदल बदल कर संतुलित भोजन के सेवन से यह लक्ष्य आसानी से प्राप्त हो सकता है।

○○○

8

वन – हमारे जीवन रक्षक

डॉ. ए. के चतुर्वेदी

वन पेड़ों का समूह होता है। अधिक पेड़ होने पर सघन वन कहलाता है। अंग्रेजी का फॉरेस्ट शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'फोरिस' से लिया गया है जिसका अर्थ 'दरवाजे से बाहर'। वन प्रकृति का उत्कृष्ट उपहार है। मान्यता है कि हजारों सदियों पहले पृथ्वी आग का गोला थी, जो धीरे–धीरे ठंडी होकर कठोर और ऊबड़–खाबड़ बनी। पृथ्वी पर जीवन सर्वप्रथम जलीय पौधों के द्वारा उत्पन्न हुआ। फिर एककोशीय जीव प्रोटोजुआ, सीलनट्रेटा, एम्फीबिया, सरीसृप, पक्षी, स्तनधारी आए। इसी प्रकार पौधे भी शैवाल, कवक, ब्रायोफाइट, टेरीडोफाइट और अनावृतबीजी (जिमनोस्पर्म) आए। जीव और पौधों का जीवन एक दूसरे पर निर्भर है मनुष्य का अस्तित्व जीव और पौधों के अस्तित्व पर निर्भर है।

पृथ्वी पर पेड़–पौधों के कारण हरियाली दिखाई देती है। पृथ्वी पर हरियाली होने से इसे जीवन देने वाला ग्रह माना गया है। हरियाली के कारण पृथ्वी विशेष सुंदर, आकर्षक दिखती है और इस हरे भरे वृक्ष समूह को वनस्पतिजात (flora) कहते हैं। वनों ने मनुष्य की उत्पत्ति को देखा ही नहीं वरन उसे विकसित करने और उन्नत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मनुष्य और पेड़–पौधे एक दूसरे के पूरक हैं। हमारे जीवन में वनों का विशेष महत्व है। वनों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।

आज परिस्थितियां बदल गई हैं। जनसंख्या विस्फोट के कारण शहरीकरण हो रहा है जिससे वनों की कटाई की जा रही है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथाकथित विकास किया जा रहा है। इस कारण भी वनों का विनाश और दोहन किया जा रहा है। अतः आज वन, मनुष्य की दया पर निर्भर हैं। यह स्थिति दयनीय है। यह विकास नहीं विनाश है। अफ्रीका को पहले अंधमहाद्वीप कहते थे क्योंकि वहां सघन वन थे, जहां दिन में भी सूर्य का प्रकाश तक नहीं आ पाता था।

विश्व में वनों का क्षेत्रफल कम होता जा रहा है, जिसके दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं : कम वर्षा, अधिक गर्मी, मौसम में परिवर्तन। इन सब कारणों से जीवन में आपाधापी आ गई है। स्थिरता कम हो गई है। सुकून, खुशहाली कम हो गई है और कम होती जा रही है। हर समय चिड़चिड़ापन स्वभाव बन गया है।

आज विश्व में वनों का क्षेत्रफल निरंतर कम होता जा रहा है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। विश्व में वनों के क्षेत्रफल का केवल 1 प्रतिशत भाग ही भारत में स्थित है, जो बहुत ही कम है। वैसे भारत में वनों का क्षेत्रफल मात्र 19 प्रतिशत है जो राष्ट्र के क्षेत्रफल तथा आबादी के अनुपात में बहुत कम है। वनों के विनाश से मनुष्य व अन्य जीव एवं पौधों का जीवन संकट में पड़ गया है। वन्य जीव लुप्त होते जा रहे हैं। प्राकृतिक सामंजस्य अर्थात् पारितत्र (इको सिस्टम) गड़बड़ा गया है। यह स्थिति दुखद है।

मनुष्य के जीवन में वनों का विशेष महत्व है। वन मनुष्य को खाना, दवाइयां काष्ठ तथा शुद्ध पर्यावरण प्रदान करते हैं। इनमें से किसी के अभाव में जीवन जीना कठिन हो जाता है। आज यह स्थापित हो चुका है कि जीवन के लिए वन आवश्यक हैं, वनों को बनाए रखना, उनका क्षेत्रफल बढ़ाना भी आवश्यक है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय हानियों से बचने के लिए वनों के संरक्षण पर बल दिया है। मनुष्य और वन में सहअस्तित्व की भावना और

सामंजस्य होना चाहिए। जब वनों का विकास होगा तभी मनुष्य का भी विकास होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2011 को अंतरराष्ट्रीय वन वर्ष घोषित किया है जिसमें अपेक्षा की गई कि वनों के संरक्षण तथा वनों का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए कार्य होंगे।

पृथ्वी का वह भाग जहां पेड़ समूह में होते हैं, वन कहलाता है। वन प्रकृति में सामंजस्य स्थापित करता है जिससे सूक्ष्मजीव से लेकर बड़े पेड़ तथा एककोशिक जीव से लेकर बहुकोशिक जीव वास करते हैं। इस प्रकार जीवन चक्र चलता रहता है। जीवन के आवश्यक घटक निरंतर शुद्ध एवं प्रचुर मात्रा में मिलते रहते हैं। पर्यावरण शुद्ध बना रहता है।

विश्व में 6 प्रकार के वन पाए जाते हैं :–

(1) शुष्क उष्णकटिबंधीय वन, जहां की जलवायु की शुष्क होती है, जैसे रेगिस्तान।
(2) आर्द्र उष्णकटिबंधीय वन जैसे पहाड़ों और समुद्रों के किनारे वाले भाग।
(3) उपोष्ण वन जहां की जलवायु शुष्क और गीली होती है।
(4) शीतोष्ण वन जहां की जलवायु चट्टानों के अनुरूप होती है।
(5) 'उप अल्पाइन' जहां की जलवायु आंशिक ठंडी होती है।
(6) अल्पाइन जहां की जलवायु पूर्णरूपेण ठंडी होती है।

भारत में सभी प्रकार के वन पाए जाते हैं क्योंकि भारत की जलवायु विभिन्न प्रकार की है। भिन्न जलवायु में भिन्न पेड़ पौधे होते हैं। उनकी उपयोगिता भी भिन्न होती है। अतः सभी वन आवश्यक है।

वनों से हमें ऑक्सीजन मिलती है जो सभी के श्वसन के लिए आवश्यक है। वनों की अधिकता होने पर पर्यावरण शुद्ध रहता है। मौसम भी संतुलित रहता है, जिससे फसल उत्पादन अधिक होता है। वन जीव जंतुओं के रहने का सुरक्षित आश्रय है। आदिकाल में मनुष्य भी जंगलों में रहता था। आज भी कुछ जातियां वनों में रहती हैं।

वन पृथ्वी पर जीवन का आधार है वनों से हमें खाना, पशुओं के लिए चारा, धागा, शहद, रबड़, औषधि, लकड़ी, ईंधन प्राप्त होते हैं। लकड़ी फर्नीचर बनाने में काम आती है। वनों द्वारा ही कोयला और पेट्रोलियम पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। वन जैव विविधता में सहायक है। अतः वन बहुमूल्य संपदा है। इनका संरक्षण एवं विस्तार आवश्यक है।

वन वर्षा को नियंत्रित करते हैं। जहां अधिक वन होते हैं वहां अधिक वर्षा होती है। जल ही जीवन है।

जनसंख्या विस्फोट एवं सुरक्षा की दृष्टि से शहरीकरण बढ़ता ही जा रहा है। सुख सुविधाओं के जुटाने, जीवन स्तर उठाने और विकास के नाम पर अत्यधिक अनियंत्रित औद्योगिकीकरण हो रहा है। इसी प्रकार कागज की भी मांग बढ़ी है। उच्च कोटि का कागज भी लकड़ी से बनाया जाता है। अतः वनों को काटकर लकड़ी प्राप्त की जा रही है। अन्न की मात्रा बढ़ाने के लिए रासायनिक खाद की अत्यधिक मात्रा के उपयोग से पृथ्वी की उत्पादन क्षमता कम हो रही है क्योंकि पृथ्वी के आवश्यक पोषक तत्व कम हो रहे हैं।

लकड़ी, कोयला जलाने से वातावरण में कार्बन डाई–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ी है। साथ ही एयर कंडीशनर एवं रेफ्रिजेरेटरों के उपयोग से अन्य ग्रीन हाउस गैसें भी अधिक मात्रा में उत्पन्न हो रही है। वनों का क्षेत्रफल कम होने से विशेषकर कार्बन–डाई–ऑक्साइड का उपयोग नहीं हो पाता है। अतः पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। वनों की कटाई से जानवरों के रहने के स्थान समाप्त हो रहे हैं। वे भी आबादी में आकर उत्पात मचाते हैं। साथ ही फसलों को बर्बाद कर रहे हैं। कुल मिलाकर संतुलन बिगड़ रहा है।

पर्यावरण के प्रदूषित होने से अम्लीय वर्षा की संभावना बढ़ गई है। अम्लीय वर्षा से हरियाली तो समाप्त होती है साथ ही इमारतों को भी हानि पहुंचती है। भवन कमजोर हो जाते हैं। ऐतिहासिक इमारतें को भी नुकसान पहुंचता हैं। इससे पर्यटन पर असर दिखाई देता है। अधिक ताप होने से जंगलों में आग लगने की घटनाएं बढ़ गई है। आग लगने से वन तो समाप्त होते हीं है साथ ही पर्यावरण समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती हैं। वनों की

कटाई से भू–स्खलन, कटाव की समस्या उत्पन्न हो रही है। वनों की सुरक्षा करना एवं क्षेत्रफल बढ़ाना परम आवश्यक है अन्यथा विकास विनाश में परिवर्तित हो जाएगा। प्राकृतिक असंतुलन से प्राकृतिक आपदाएं आ रही हैं। भूकंप आना, सुनामी लहरें, विभिन्न प्रकार के तूफान आने से माल और जान की हानि होती है।

वर्षों से वनों को राजस्व का प्रमुख स्रोत माना गया है। परंतु दीर्घकालीन लाभ के स्थान पर क्षणिक लाभ देखकर वनों को काटा जा रहा है। प्राकृतिक असंतुलन बढ़ रहा है जिससे जीवन संकट में पड़ गया है। यदि वनों की कटाई इसी तरह होती रही तो पर्यावरण में प्रदूषकों की संख्या बहुत बढ़ जाएगी। ऑक्सीजन की उपलब्धता कम हो जाएगी। भूमिगत जीवाश्म भी कम हो जाएंगे। इन सब कारणों से जीवन एवं पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होंगी और स्वास्थ्य प्रभावित होगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वनों की उपयोगिता को समझते हुए वर्ष 2011 को अंतरराष्ट्रीय वर्ष घोषित किया था। वन मनुष्यों के लिए है। वनों के संरक्षण तथा क्षेत्रफल बढ़ाने का दायित्व मनुष्यों पर है। अंतरराष्ट्रीय वन वर्ष का एक प्रतीक चिह्न भी बनाया गया है। भारत सरकार भी जन समस्याओं के प्रति चिंतित है। उसने विभिन्न कार्यक्रमों को चलाने का प्रयास किया है जिससे वनों का क्षेत्रफल बढ़ सके और प्राकृतिक आपदाएं कम आएं। भारत में वनों की सुरक्षा के लिए वर्ष 2006 से विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। आशा है कि उनके परिणाम भी अच्छे होंगे। कार्यक्रम इस प्रकार है :–

1. नेशनल मिशन फॉर ग्रीन इंडिया प्लान।
2. नेशनल ऐक्शन प्लान फॉर क्लाईमेट चेंज।
3. नेशनल एनवायरन्मेंट एवेयरनेस कंपेनियन।
4. नेशनल एफौरेस्टेशन एंड ईको डवलपमेंट बोर्ड।
5. नेशनल ग्रीन क्रॉप्स प्रोग्राम (एन.जी.सी.)।
6. इंटिग्रेटेड फौरेस्ट प्रोटेक्शन स्कीम।
7. जोइन्ट फौरेस्ट मैनेजमेंट प्रोग्राम
8. मिनिस्ट्री ऑफ एन्वायरन्मेंट एंड फौरेस्ट

वर्ष ऋतु में वन विभाग भी प्रतिवर्ष हजारों पौधों को लगाते हैं। सही देखभाल न होने के कारण कुछ ही पौधे उग पाते हैं। जितना प्रयास किया जा रहा है, उतना लाभ तो नहीं मिलता। लेकिन प्रयास जारी है। भू माफिया जमीनों को कंकरीट के जंगल बनाने के लिए बेच देते हैं। वनों का क्षेत्रफल नहीं बढ़ पा रहा है।

जनता का सहयोग प्राप्त करने के प्रयास किए जा रहे हैं। सबके अथक प्रयासों से वनों का क्षेत्रफल बढ़ पाएगा। वन मनुष्यों के पूरक हैं। वन जीवन को संजोए रखते हैं। जब जीवन होगा तभी उल्लास, स्फूर्ति होगी और जीवन आनंदमय होगा। सुख सुविधाएं होनी चाहिए परंतु विनाश की डगर पर नहीं। जीवन को बचाने के लिए, संपन्नता, वैभव प्राप्त करने के लिए वनों का संरक्षण क्षेत्रफल बढ़ाना आवश्यक है।

अंतरराष्ट्रीय वन वर्ष का चिह्न इस प्रकार है :

अंतरराष्ट्रीय वन वर्ष 2011

○○○

9

बदलती जलवायु में कृषि जैव–विविधता की महत्ता

मोहन सिंह जांगड़ा

जलवायु परिवर्तन दुनिया के लिए कितनी बड़ी समस्या है, यह बात एक आम आदमी समझ नहीं पाता। उसे ये शब्द कुछ "तकनीकी" लगते हैं, इसलिए वो इसकी तह तक नहीं जाता है और इसे एक वैज्ञानिक शब्दावली मानकर छोड़ दिया है। ज्यादातर लोगों को लगता है कि वैश्विक फिलहाल संसार को इससे कोई खतरा नहीं है। भारत में भी वैश्विक ऊष्मन (ग्लोबल वार्मिंग) प्रचलित शब्द नहीं है और भाग–दौड़ में लगे रहने वाले भारतीयों के लिए भी इसका कोई अधिक मतलब नहीं है। लेकिन अगर हम इसकी तह में जाएं तो हमें पता चलेगा कि वाकई यह विषय रोचक और बहुत महत्वपूर्ण है। विज्ञान की दुनिया की बात करें तो वैश्विक ऊष्मन को लेकर विभिन्न भविष्यवाणी की जा रही है। इसको 21वीं शताब्दी का सबसे बड़ा खतरा बताया जा रहा है। यह खतरा तृतीय विश्वयुद्ध या किसी क्षुद्रग्रह के पृथ्वी से टकराने से भी बड़ा माना जा रहा है। यह समय औसत वैश्विक ताप लगभग 15 डिग्री सेल्सियस है। जलवायु परिवर्तन संबंधी अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक समिति (IPCC) के आंकड़ों के अनुसार पृथ्वी का वर्तमान औसत ताप, पिछले एक हजार वर्षो की तुलना में पर्याप्त अधिक है। पिछली पूरी शताब्दी में पृथ्वी का औसत ताप 0.6 डिग्री सेल्सियस ही बढ़ा था जबकि अब वह 0.74 डिग्री की दर से बढ़ रहा है। कुल्लू घाटी में संगृहीत ताप के आंकड़ों (1960–2010) के विश्लेषण से पता चलता है कि न्यूनतम ताप अधिकतम की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ रहा है। यहां न्यूनतम ताप 0.71 डिग्री सेल्सियस, अधिकतम तापमान 0.25 डिग्री सेल्सियस तथा औसत तापमान 0.48 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक की दर से बढ़ रहा है। यह दर अधिक कही जा सकती है। ऐसे प्रमाण भी है कि मौसम के अचानक चरम पर पहुंचने से सूखा, अचानक भारी बारिश, बाढ़, अत्यधिक गर्मी और शीत लहर आदि के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं। ये सारी बातें खेती, बागवानी और पशुपालन पर बुरा प्रभाव डालती हैं। ज्यादा चिंतित करने वाली बात यह है कि एक ओर जहां देश में कुल बारिश में इजाफा होने की बात कही जा रही है वहीं बारिश के दिनों की संख्या में कमी आई है। स्पष्ट है कि कम दिनों में अधिक वर्षा। जाहिर है इससे फसल पैदावार में अनिश्चितता तथा खेती में जोखिम बढ़ेगा और खासकर वर्षा–आधारित कृषि व शीतोष्ण फल प्रभावित होंगे।

जलवायु परिवर्तन का दौर आसानी से समाप्त होने वाला नहीं है क्योंकि इसके लिए जिम्मेवार विकसित देशों के अपने स्वार्थ हैं। इसके दुष्प्रभावों से बचने के लिए तरीके हमें ही खोजने होगें। कृषि में उन पद्धतियों को अपनाना होगा जो इसके कुप्रभावों से सुरक्षित रहें अर्थात् फसल उत्पादन में गिरावट न आए। एक और हरित क्रांति की बात की जा रही हैं। परंतु ऐसा हरित क्रांति, जो एकल फसल पद्धति को बढ़ावा देती है, के दुष्परिणाम फसल उत्पादन में गिरावट, उत्पादन लागत में वृद्धि, भूमि का बंजरपन, कीटनाशियों एवं उर्वरकों से पर्यावरण प्रदूषण के रूप में हमारे सामने हैं। आधुनिक खेती वैश्विक ऊष्मन को बढ़ाने के लिए भी जिम्मेदार है। आँकड़ों के मुताबिक ग्रीन हाउस उत्सर्जन में बीस फीसदी हिस्सेदारी कृषि क्षेत्र की है। ऐसी स्थिति में

जरूरी है कि कृषि के सतत विकास के लिए सस्ती और पर्यावरण संरक्षी विधियों जैसे कि जैविक–खेती और कृषि जैव–विविधता आदि पर अधिक जोर देना होगा। विविधता प्रधान फसल पद्धति अधिक स्थिर होती है क्योंकि इसमें समायोजन तथा विकल्पों की गुंजाइश होती है। कृषि जैव–विविधता उत्पादन तंत्र को अनेक लाभ प्रदान करती है जिनमें उत्पादन व उत्पादकता से जुड़े लाभ, कृषि पारिस्थितिक तंत्रों की क्रियाशीलता तथा मानव की सुख–सुविधाएं (तालिका 1) आदि शामिल है।

तालिका 1. कृषि जैव–विविधता के कुछ लाभ

उपलब्धीकरण	व्यवस्थाकरण	सहायक	सांस्कृतिक
• खाद्य एवं पोषक तत्व • ईंधन • पशु आहार • औषधियां • रेशे व कपड़ा • औद्योगिक कच्चा माल • सुधरी किस्मों व उपज के लिए आनुवंशिक सामग्री • पीड़करोधिता	• पीड़क संतुलन • अपरदन नियंत्रण • जलवायु नियंत्रण • प्रकृतिक आपदा (सूखा, बाढ़ व आग) पर परागण क्रिया का संतुलन	• मृदा की रचना • मृदा की रक्षा • पोषक तत्व चक्र • जल चक्र	• आहार व जल के स्रोत के रूप में तपोवन • कृषीय जीवनशैली किस्में • आनुवंशिक सामग्री का भंडार

हिमाचल प्रदेश में शीतोष्ण फलों में सबसे अधिक सेव के अंतर्गत 67 प्रतिशत क्षेत्र है तथा यह कुल शीतोष्ण फल उत्पादन का 82 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त 28 प्रतिशत भाग में प्लम, आडू और खुरमानी लगाई गई है। अन्य शीतोष्ण फलों का क्षेत्र केवल 5 प्रतिशत ही है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रदेश में एकल फसल पद्धति प्रचलित है। जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए इस एकल फसल पद्धति को योजनाबद्ध तरीके से कृषि जैव–विविधता में बदलने की जरूरत है। सेब के अलावा नाशपाती, आडू, अनार, नेकट्रीन, पलम, खुरमानी, चेरी, कीवी, नींबू जाति के फलों तथा गिरीदार व सूखे मेवे वाले फलों पर भी अधिक जोर देने की आवश्यकता है। उपजाऊ व कृषि योग्य जमीन के साथ यदि सिचाईं की सुविधा उपलब्ध हो तो स्ट्राबैरी, ब्लैक बेरी, ब्लू बेरी और रस बेरी की उपयुक्त चयनित किस्मों को उगाया जा सकता है। सेब में भी किस्मों का चुनाव उनकी द्रुतशीतन (चिलिंग) आवश्यकता व मौसम संवेदनशीलता को ध्यान में रखकर करना होगा। जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध लड़ने में कृषि जैव–विविधता एक अहम भूमिका निभाएगी इस बात में कोई दो राय नहीं है। बदलते जलवायु के परिप्रेक्ष्य में खाद्य सुरक्षा और कृषि उपज को बनाए रखने के लिए निम्न बातों पर गहन विचार करके अपनाना होगा :

सूचना, जागरूकता एवं ज्ञान आधार

इस बात का विश्लेषण करने के लिए कि जलवायु परिवर्तन से जैव विविधता को भविष्य में क्या–क्या खतरे हो सकते हैं, जैव विविधता का विस्तार, वितरण, गहनता तथा अनुकूलन प्रतिरूप की जानकारी होना बहुत जरूरी है। सूचना का अभाव का एक वर्तमान बाधा है परंतु प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि हमारे सामने जलवायु परिवर्तन से जुड़ी बहुत गंभीर चुनौतियां है। कृषि जैव–विविधता द्वारा पारिस्थितिक तंत्र को प्रदत्त सेवाओं के बारे जानकारी व उनमें लगातार सुधार बहुत जरूरी है। ये सेवाएं जलवायु परिवर्तन से कैसे प्रभावित होगीं इस बात का ज्ञान बदलती जलवायु में स्थानीय कृषि में सतत विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। किसानों के अनुकूलन कौशलों, उनके पारिस्थितिकीय ज्ञान तथा स्थानीय संस्थाओं को सुदृढ़ करना, जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन कौशलों के विकास को और प्रभावशाली बनाएगा। यह किसानों व ग्रामीणों को जलवायु परिवर्तन से जुड़े विभिन्न वार्तालापों व और नीति निर्धारण आदि में मुख्य भूमिका अदा करने का मौका देगा। स्थानीय कौशल का विकास किसानों व शोधकर्ताओं के पूरक ज्ञान पर निर्भर करेगा।

- कृषि जैव–विविधता का झुकाव व उससे जुड़े जोखिमों को परखने के लिए ज्ञान को आधार बनाना। जैव–विविधता के बारे में सूचना तंत्रों व पूर्व चेतावनी तंत्रों को मजबूत करना।
- जलवायु परिवर्तन के आंकड़ों को निचले स्तर तक पहुंचाना ताकि किसानों व ग्रामीणों को इस बात को पूर्ण पता हो कि जैव–विविधता पर क्या निर्णय व योजनाएं हैं।
- कृषि जैव–विविधता के उचित प्रबंधन के लिए स्थानीय संस्थाओं को बढ़ावा देना तथा समुदायिक सामर्थ्य को सुदृढ़ करना जिससे वे आनुवंशिक संसाधनों व उनसे जुड़ी हर सूचना प्राप्त कर सके और जलवायु परिवर्तन से लड़ सके।
- कृषि जैव–विविधता व पारिस्थितिक सेवाओं से संबंधित प्रबंधन में सुधार के लिए ज्ञान का प्रचार–प्रसार, उपयुक्त तकनीक व साधनों को सुदृढ़ करना।
- भविष्य में आनुवंशिकीय संसाधनों का वितरण कैसा होगा, इस बारे में भविष्यवाणी करने वाले मॉडलों का प्रयोग करना।
- जलवायु परिवर्तन के कारण भोजन व कृषि के लिए जरूरी जिन किस्मों, जातियों को खतरा है उनके बारे में राष्ट्रीय गणना में अद्यतन जानकारी देना।

जैव–विविधता संबंधी योजना व नीति–निर्धारण

राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय स्तर पर बदलते प्रचलित जलवायु के प्रेक्ष्य में खाद्य और कृषि के संरक्षण व सतत योगिक कौशलों से संबंधित प्रचलित कार्यक्रमों में जैव–विविधता का बहुत कम समावेश रहा है। प्रजनन एक लंबी प्रक्रिया है। इसलिए जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन अपनाने के लिए विभिन्न योजनाएं बनाने की जरूरत है। एक ओर जहां अनेक चुनौतियों से तकनीकी हस्तक्षेप के जरिए निपटा जा सकता है, वहीं कुछ अन्य के लिए नीतिगत सहायता की जरूरत भी पड़ सकती है। जैव विविधता और कार्बन चक्र में मृदा की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः मृदा के बारे में अच्छी समझ होनी चाहिए।

आनुवंशिक विविधता का संरक्षण व उपयोग

जलवायु परिवर्तन आनुवंशिक जैव–विविधता को पर्याप्त हानि पहुंचा सकता है। इसलिए आनुवंशिक जैव–विविधता का वास्तविक व बदली हुई स्थिति दोनों रूपों में संरक्षण बहुत जरूरी है ताकि आने वाली पीढ़ियां बदलती जलवायु के प्रति अपनी अनुकूलता की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। परंतु चुनौती यह है कि संरक्षण व प्रयोग की ऐसी एकीकृत व समेकित विधि कैसे बनाई जाए जो आर्थिक रूप से प्रभावशाली व भविष्य में जलवायु परिवर्तन के सभी पहलुओं के प्रति सुरक्षित भी हो।

- फसलों में इस प्रकार का सुधार करना जिससे उनमें जल उपयोग अधिकतम हो और हानिकर तत्वों के प्रति सहनशीलता बढ़े।
- अब तक कम उपयोग में लाई जाने वाली ऐसी फसलों व किस्मों का चुनाव करना जो बिगड़ते पर्यावरण के प्रति अधिक सहनशील हों।

• विस्तृत पादप आनुवंशिकी और जैव–विविधता का समेकित व समन्वित प्रबंधन।

• फसलों की पुनर्जीवन शक्ति व पीड़कविरोधी शक्ति को बढ़ाने के लिए रोग–निरोधी किस्मों के उपयोग को बढ़ावा देना।

• चरम मौसम के प्रति अनुकूल विशेष स्थानीय किस्मों के प्रयोग को बढ़ावा देना।

आनुवंशिक विविधता का संरक्षण व उपयोग

अच्छी बात यह है कि देश के कृषि वैज्ञानिक इस विषय से अनजान नहीं है। मौजूदा जलवायु परिवर्तन से निपटने योग्य तकनीकों के लिए शोध और क्षमता संवर्धन का बुनायादी ढांचा तैयार कर खेतों पर इसका परीक्षण किया जा रहा है। परंतु कृषि वैज्ञानिकों को अपने स्तर पर फसलों की ऐसी नई किस्में तैयार करना होगा जो गर्मी, ठंड या पानी से जुड़ी समस्याओं से पैदा होने वाले दबाव को सहन सकें। इसके इलावा वे ऐसी अन्य तकनीकों तथा खेती के ऐसे तरीकों की खोज कर सकते हैं जो जलवायु परिवर्तन का मुकाबला कर सकें। किसानों को योजनाबद्ध अनुदान से खाद्य पदार्थों, फाइबर, जैव ईंधन के उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है। इसके साथ ही किसान कार्बन संचय, बाढ़ नियंत्रण, जल संरक्षण और कृषि जैव–विविधता की सुरक्षा करने के क्षेत्र में भी काम कर सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के साथ जैव–विविधता के लिए विभिन्न देशों व क्षेत्रों की एक दूसरे पर निर्भरता बढ़ेगी। इसलिए राष्ट्रीय व अंतरांष्ट्रीय सहयोग जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध लड़ने के लिए लंबी अवधि के प्रयासों में एक अहम भूमिका अदा करेगा।

○○○

10

स्वास्थ्यवर्धक अंगूर

डॉ. आर. एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राव

अंगूर को देख बरबस ही बच्चों के साथ बड़ों का मन भी अंगूर खाने का हो जाता है। और हो भी क्यों न, यह फल गुणकारी होने के अलावा स्वास्थ्यवर्धक भी होता है। इसलिये इसका सेवन कर लाभ उठाया जा सकता है।

अंगूर की उत्पत्ति सबसे पहले किस देश में हुई, कुछ कहा नहीं जा सकता है। वनस्पति विशेषज्ञों का विचार है कि सबसे पहले अंगूर की उत्पत्ति एशिया के 'काकेशस' में होती थी। मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ 1300 ई० में ईरान और अफगानिस्तान से अंगूर भारत पहुंचा। इतिहासकारों के अनुसार 3000 से 4000 ई० पूर्व मिस्र में अंगूरों की खेती होती थी। आजकल फ्रांस, अमेरिका, अफ्रीका एवं एशिया के कई देशों में अंगूर की पैदावार होती है। काबुल, कंधार के अंगूर विश्वभर में सबसे स्वादिष्ट व गुणकारी माने जाते हैं। भारत में जम्मू–कश्मीर, हरियाणा, गुजरात, पंजाब, हिमाचल प्रदेश में खूब अंगूर उगाए जाते हैं। महाराष्ट्र में अंगूर की खेती की जाती है। अनेक प्रदेशों में अंगूर से शराब बनाई जाती है।

वानस्पतिक परिचय

विभिन्न प्रदेशों में अंगूर को विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। संस्कृत में अंगूर को द्राक्षा, फलोत्तम, मृद्वीका तथा मधुरस कहते हैं। तमिल में कंडिमडि, कोडि मुन्दरी, तेलुगू में द्राक्षा पेड़ी, द्राक्षा पेड़, मराठी में काली द्राक्ष, गुजरात में द्राख, अरबी में हबुस तथा फारसी में मुनक्का कहते हैं। लैटिन में *वाइटिस वाइनिफेरा* और अंग्रेजी में *ग्रेप्स* कहते हैं। अंगूर विदेशी जाति का फल है। शीत ऋतु में पकने लगता है। काले और बैंगनी रंग के अंगूर अधिक मधुर, रक्तवर्धक व स्वादिष्ट होते हैं। द्राक्षा अंगूरों से मुनक्का और किशमिश बनाई जाती है। बेदाना द्राक्षा में बीज नहीं होते हैं।

रासायनिक संघटन

अंगूर में जल की मात्रा सबसे अधिक होती है। विशेषज्ञों के अनुसार अंगूर में 75% जल होता है। प्रोटीन 8%, कार्बोहाइड्रेट 10.2%, वसा 0.1%, अम्ल 0.43%, शर्करा 18% होती है। इनके अतिरिक्त 100 ग्राम अंगूर में विटामिन 'ए' 5% विटामिन 'सी' 3%, 13% कैलोरी ऊष्णाशक्ति होती है। अंगूर में शर्करा की अधिकता होने के कारण ग्लूकोज बनाया जाता है। ग्लूकोज बहुत शक्तिवर्धक होता है।

अंगूर के गुण

अंगूर मधुर रस, अम्ल से युक्त, शीत, पित्त विकार नाशक, अरुचि, दाह को नष्ट करता है। अंगूर स्वादिष्ट रुचिकर और क्षुधावर्धक अर्थात् भूख को बढ़ाने वाले होते हैं। अंगूर के सेवन से पाचन शक्ति तेज होती है। अंगूर कोष्ठबद्धता को नष्ट करके चर्म रोग में लाभ पहुंचाता है। रक्त की उष्णता को नष्ट करके चर्म रोगों से सुरक्षित रखता है। अंगूर के सेवन से प्यास शांत होती है। हृदय को बहुत शक्ति मिलती है। रोगी को भी अल्प मात्रा में अंगूर खिलाए जाने चाहिए क्योंकि अंगूर विरेचक होते हैं और अतिसार की उत्पत्ति करते हैं। कच्चे अंगूर शीतल और रूक्ष होते हैं। इनके सेवन से आमाशय और प्लीहा को हानि पहुंचती है। इससे वायु प्रकोप विकसित होता है। यूनानी चिकित्सकों के अनुसार अंगूर दूसरे दर्जे का गर्म फल होता है। अंगूर रोचक,

मधुर और पाचन शक्ति को तीव्र करते हैं। रक्त को शुद्ध करने के साथ रक्त की वृद्धि भी करते हैं। अंगूरों के सेवन से नेत्र ज्योति भी बढ़ती है। अंगूर के सेवन से शुक्र में वृद्धि होती है और मूत्राशय की जलन नष्ट होती है। वक्षस्थल में रुका बलगम (कफ) अंगूरों के सेवन से निष्कासित होता है।

अंगूर के लाभकारी औषधीय उपयोग

1. मुनक्के को दूध में उबालकर पीने से शारीरिक क्षीणता नष्ट होती है।

2. अंगूर की बेल के 25 ग्राम पत्तों को जल से धोकर, सिल पर पीसकर, जल में मिलाकर छानकर पीने से वृक्क (गुर्दे) का शूल नष्ट होता है।

3. अंगूर और मिश्री खाने से ग्रीष्म ऋतु में उष्णता के तीव्र प्रकोप से सुरक्षा होती है।

4. अंगूरों में 'विटामिन सी' अधिक मात्रा में होता है। प्रतिदिन 100 ग्राम या अधिक अंगूर खाने से स्कर्वी रोग से सुरक्षा होती है।

5. प्रतिदिन भोजन के बाद अंगूर खाने से स्त्रियों में ऋतुस्राव की विकृतियां नष्ट होती है।

6. अंगूरों का सेवन करके गाय का दूध पीने से शारीरिक उष्णता नष्ट होती है और मस्तिष्क को शक्ति मिलती है।

7. कोष्ठबद्धता से पीड़ित रोगी को चार–पांच मुनक्कों के बीच नमक भरकर, हल्का सा गर्म करके सेवन करने से बहुत लाभ मिलता है। मुनक्का खाकर गर्म दूध पीने से कोष्ठबद्धता शीघ्र नष्ट हो जाती है।

8. मुनक्के को जल में उबालकर क्वाथ (काढ़ा) बनाकर पीने से अजीर्ण और कोष्ठबद्धता शीघ्र नष्ट होती है।

9. 100 ग्राम अंगूरों को रात में जल डालकर रखें प्रातः उठकर उन अंगूरों को मसलकर उसमें जीरे का चूर्ण डालकर सेवन करने से पित्त विकृति से उत्पन्न दाह नष्ट होती है।

10. अंगूर और मुलहठी को जल में उबालकर क्वाथ बनाकर पीने से अधिक प्यास से मुक्ति मिलती है।

11. अंगूर और सौंफ 10–10 ग्राम मात्रा में लेकर रात को जल में डालकर रख दें। प्रातः उठकर दोनों को मसलकर, छानकर पीने से अम्लपित्त की विकृति नष्ट होती है।

12. प्रमेह रोग की विकृति में अंगूर, मधु और शर्करा मिलाकर सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

13. अंगूर और अडूसे को जल में उबालकर क्वाथ बनाएं। इस क्वाथ को छानकर पीने से अनेक प्रकार के शूलों का निवारण होता है।

14. काले अंगूरों को जल में उबालकर क्वाथ बनाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र विकृति नष्ट होती है।

15. अंगूरों और धनिये को रात को जल में डालकर रखें। प्रातः उठकर दोनों को मसलकर, छानकर पीने से आधा सीसी का शिरः शूल नष्ट होता है।

16. अंगूर की बेल काटने पर उसमें से जो रस निकलता है उस रस को चर्म रोग पर स्थल लगाने से बहुत लाभ होता है।

17. अंगूर का शर्बत जल में मिलाकर पीने से उष्णता का प्रकोप नष्ट होता है। ग्रीष्म ऋतु में प्यास कम लगती है। पसीना भी कम आता है।

अंगूर के शर्बत की निर्माण विधि

तीन कि.ग्रा. अंगूर को स्वच्छ जल से धोकर उनका रस निकाल लें। फिर डेढ़ कि.ग्रा. चीनी को जल में उबालकर चाशनी बनाएं। जब डेढ़ तार की चाशनी बनने लगे तो उसमें रस मिलाकर थोड़ी देर उबालकर आग से उतार लें। इस शर्बत को शीतल होने पर बोतलों में भरकर रखें।

अंगूरों से निर्मित अंगूरासव प्रतिदिन 15–20 मिलीग्राम की मात्रा में भोजन के बाद, समान मात्रा में जल मिलाकर पीने से खांसी, श्वास, कंठ रोग और शारीरिक क्षीणता नष्ट होते हैं। कोष्ठबद्धता का निवारण होता है।

ooo

11

आयोडीन और स्वास्थ्य

डॉ. ए. के. चतुर्वेदी

कार्य के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। ऊर्जा आहार से प्राप्त होती है। आहार संतुलित होगा, तब ही उचित मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होगी। शरीर दो प्रकार के कार्य करता है : एक शारीरिक क्रियाएं जैसे पाचन, श्वसन, दिल का धडकना, रक्त संचार, मल–मूत्र निष्कासन, मस्तिष्क एवं सुषुम्ना का कार्य आदि, दूसरे, परिश्रम के कार्य जैसे पैदल चलना, भार उठाना आदि। संतुलित आहार द्वारा ही अधिक मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होगी। संतुलित आहार में प्रोटीन 50%, कार्बोहाइड्रेट, 45% वसा 1% लवण 1.5% जल 2% विटामिन होते हैं।

शारीरिक क्रियाओं और विभिन्न उपापचय क्रियाओं के संचालन एवं अच्छे स्वास्थ्य के लिए लवणों का महत्वपूर्ण योगदान है। लवण अति आवश्यक होते हैं। इनकी मात्रा भी सूक्ष्म होती है। ये उपापचय क्रियाओं को संपादित कराते हैं, जिससे अच्छा स्वास्थ्य बना रहता है।

शरीर को आयोडीन की आवश्यकता सूक्ष्म मात्रा अर्थात् 1 मिग्रा. प्रति सप्ताह होती है। आयोडीन की आपूर्ति जल और भोज्य पदार्थों पर द्वारा होती है। आयोडीन थायरॉइड ग्रंथि में पाई जाती है। आयोडीन, थायरॉइड हॉर्मोन टी 3, टी 4 का निर्माण करती है। यह हॉर्मोन शरीर के विभिन्न अंगों जैसे प्रजनन अंग, मस्तिष्क के लिए अति आवश्यक है। शरीर की विभिन्न उपापचय क्रियाओं का संपादन सुचारु रूप से आयोडीन की उपस्थिति से होता है। थायरॉइड हॉर्मोन का प्रभाव गर्भकाल से प्रारंभ होकर जीवन पर्यंत चलता रहता है।

पृथ्वी के निर्माण के समय से आयोडीन पृथ्वी में प्रत्येक जगह समान रूप से विद्यमान थी। परंतु कालांतर में पृथ्वी की सतह से आयोडीन घुलकर समुद्र में पहुंच गई। जिससे कुछ क्षेत्रों में आयोडीन की कमी हो गई। पृथ्वी में आयोडीन की कमी पहाड़ी, तराई और अधिक वर्षा होने वाले क्षेत्रों में पाई गई है। आयोडीन की कमी का प्रभाव जल, खेती से उत्पन्न खाद्य पदार्थो में पाया गया है। आयोडीन की कमी का प्रभाव मनुष्यों तथा पशुओं पर दृष्टिगोचर होता है। आयोडीन की कमी से विकास अवरुद्ध हो जाता है। परिणामस्वरूप उत्पादकता भी कम हो जाती है।

आयोडीन की कमी से पशुओं में दूध, मांस की मात्रा कम हो जाती है। शरीर में आयोडीन की कमी से थायरॉइड हॉर्मोन का स्राव कम होता है जिससे शारीरिक व मानसिक विकास कम होता है। आयोडीन की कमी से घेंघा (ग्वायटर) तो होता ही है, अनेक जटिल रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

विश्व में आयोडीन की कमी, विकराल समस्या के रूप में विद्यमान है। अनुमान है कि विश्व में करीब उन्नीस करोड़ व्यक्ति आयोडीन की कमी के कारण विभिन्न रोगों से ग्रस्त हैं। भारत में भी पाँच लाख व्यक्ति आयोडीन की कमी से होने वाले रोगों से ग्रस्त हैं। देश के प्रत्येक क्षेत्र में आयोडीन की कमी से ग्रसित रोगी मिल जाएंगे। परंतु इसका प्रकोप निचले हिमाचल क्षेत्र तथा तराई के क्षेत्रों में अधिक है। आयोडीन की कमी

के क्षेत्रों में रहने वाले पशुओं में भी आयोडिन की कमी पाई गई है। इन पशुओं का विकास कम होता है, जिससे उत्पादकता भी कम होती है।

आयोडीन की कमी से मुख्य रूप से घेंघा या ग्वायटर रोग हो जाता है जिसमें गर्दन के अग्रभाग में थायरॉइड ग्रंथि के बढ़ जाने से सूजन आ जाती है। थायरॉइड ग्रंथि का आकार बढ़ने से हॉर्मोन उत्पादन में कमी हो जाती है, जिससे विभिन्न उपापचय क्रियाएं सुचारु रूप से संपन्न नहीं हो पातीं, जिससे शरीर का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं व शिशुओं में आयोडीन की कमी होने की संभावना अधिक होती है। छोटे बच्चों में आयोडीन की कमी होने पर सुस्ती, मंदबुद्धिता, कार्य करने में अरुचि, शारीरिक और मानसिक विकास का रुक जाना, लकवा होना, महिलाओं में बाँझपन की समस्याएं हो जाती है। माँ में आयोडीन की कमी होने से गर्भस्थ शिशु में आयोडीन की कमी होना स्वाभाविक है। बच्चा जन्म से ही थायरॉइड ग्रंथि के कम स्राव के कारण अबटु अल्पक्रियता (हाइपोथाइराडिज्म) से ग्रस्त हो जाता है। ये रोग स्कूल जाने वाले बच्चों को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। बच्चे रोगग्रस्त होने पर अपंग, मंद बुद्धि वाले हो जाते हैं। शारीरिक एवं मानसिक क्षमता कम होने के कारण कार्य क्षमता भी प्रभावित होती है।

आयोडीन की कमी के कारण होने वाले रोगों का उपचार उपलब्ध नहीं है। यदि परिवर्तन हो गए है तो वे स्थायी होते हैं। यह स्थिति बहुत ही दयनीय एवं दुःखदायी होती है। आयोडीन की कमी से उत्पन्न समस्याओं का बचाव संभव है। समस्या विकराल रूप धारण न करे इसलिए आयोडीन की आपूर्ति नियमित होनी चाहिए।

भारत सरकार ने रोग की विकरालता को देखते हुए कानून द्वारा नमक में आयोडीन मिलना अनिवार्य कर दिया है। 1 किलोग्राम नमक में 100 मि.ग्रा. आयोडीन का लवण मिलाया जाता है। कुछ संगठन आयोडीन युक्त नमक का विरोध कर रहे हैं। यह विरोध करना गलत है। जनहित में आयोडीन की कमी को दूर करने के उपाय किए गए हैं, जिससे अपंगता, शारीरिक एवं मानसिक विकास की कमी को दूर किया जा सकेगा।

जिन क्षेत्रों में आयोडीन की बहुत अधिक कमी है, वहाँ तो आयोडीन के इंजेक्शन लगाना लाभकारी होगा। एक वर्ष की आयु वाले बच्चों को 0.5 मि.ली., एक से छः वर्ष की आयु के बच्चों को 1 मि.ली. तथा इससे बड़े बच्चों को 2 मि.ली. के इंजेक्शन दिए जाते हैं। इंजेक्शनों का प्रभाव 4 वर्ष तक रहता है। फिर आयोडीन के कमी के अनुसार पुनः इंजेक्शन या आयोडीन युक्त नमक के नियमित सेवन से आयोडीन की कमी से होने वाली समस्याओं से बचाव संभव है।

शिशु के शारीरिक एवं मानसिक रूप में कमी होना सामाजिक अपराध है। इसकी रोकथाम करना आवश्यक है। स्वस्थ बच्चे ही देश का भविष्य हैं। ऐसे प्रयास करने होंगे जिससे आयोडीन की कमी न रहे। तभी बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास संभव है।

पशुओं में भी आयोडीन की कमी के कारण दूध की कमी हो जाएगी। दूध की कमी से विशेषकर बच्चों व वृद्ध बीमार लोगों को कष्ट होगा। उनका स्वास्थ्य पहले से ही खराब है और दूध की कमी से स्वास्थ्य और गिर जाएगा। भविष्य को सुधारने और समाज के स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक है कि आयोडीन की कमी न हो।

○○○

12

विज्ञान समाचार

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

1. पूर्णिमा के बाद जंगली पशु अधिक घातक हो जाते हैं।

अनेक देशों के लोकगीतों एवं लोक कथाओं में पूर्णिमा को विपत्तियों के आगमन की पूर्व सूचना देने वाला बताया गया है। कहा गया है कि इस काल में प्रेतात्माएं भेड़ियों का रूप धारण कर लोगों पर आक्रमण करती हैं। हाल के अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्ष, उपर्युक्त धारणा की कुछ हद तक पुष्टि करते हैं। अफ्रीकी देश तंजानिया में सन् 1988 से 2009 के बीच ग्रामीणों पर शेरों तथा अन्य घातक जंगली पशुओं द्वारा किए गए 500 आक्रमणों के अध्ययन से पता चला है कि इनमें से सभी आक्रमण पूर्णिमा के बाद के कुछ दिनों में शाम से 10 बजे रात के बीच किए गए। यह अध्ययन क्रेग पैकर नामक वैज्ञानिक के नेतृत्व में किया गया। क्रेग पैकर संयुक्त राज्य अमेरिका में युनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा कॉलेज ऑफ बायोलौजिकल सांइसेज में कार्यरत हैं। इस अध्ययन से संबंधित इनका एक शोध पत्र हाल ही में 'पब्लिक लाइब्रेरी ऑफ सांइस' नामक जर्नल में प्रकाशित किया गया है। इस शोध पत्र में बताया गया है कि जंगली आदमखोरों द्वारा पूर्णिमा के बाद शाम के समय लोगों पर आक्रमण के लिए चुने जाने का कारण यह है कि उक्त समय में चाँद दिखाई नहीं पड़ता और अंधेरा रहता है। साथ ही यही वह समय है जब लोग अपने–अपने काम से वापस घर लौटते हैं।

2. नासा ने मंगल ग्रह पर जीवन के संकेत ढूढ़ने के स्थान का चयन कर लिया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के "नेशनल एरोनॉटिक्स ऐंड स्पेस ऐडमिनिस्ट्रेशन (नासा)" ने मंगल ग्रह पर उस स्थान का चयन कर लिया है जहां पर इसी वर्ष इसके द्वारा भेजा जाने वाला मार्स रोवर 'क्युरियोसिटी' उतरेगा तथा जीवन की उपस्थिति के संकेत ढूँढ़ेगा। छह पहियोंवाली 'क्युरियोसिटी' नामक मशीनी प्रयोगशाला मंगल ग्रह के जिस स्थान पर उतरेगी उसका नाम है 'गेल क्रेटर'। इस क्रेटर में इस प्रयोगशाला द्वारा विभिन्न ऊँचाइयों पर मिट्टी तथा सल्फेट खनिजों के नमूने लिए जाएंगे तथा उनकी जाँच की जाएगी। मंगल ग्रह पर 'एबर्सवाल्डे' नामक एक अन्य क्रेटर भी था जिसके बारे में वैज्ञानिकों ने पहले विचार किया था। परंतु अंततः 'गेल' क्रेटर को अधिक उपयुक्त पाया गया। हालांकि, वैज्ञानिकों को मंगल ग्रह पर किसी जीवधारी के उपस्थित होने की आशा कम है, परंतु इस अध्ययन से इतना पता चल सकता है कि अतीत में उस ग्रह पर सूक्ष्मजीव (माइक्रोब) या अन्य किसी निम्न स्तर के प्राणी मौजूद थे या नहीं। आशा है कि "क्युरियोसिटी" (मार्स सांइस लेबोरेटरी) मंगल ग्रह के 'गेल' क्रेटर पर अगस्त 2012 में पहुंच जाएगा तथा अपना काम शुरू कर देगा।

3. जी सैट–12 अपनी वृत्ताकार भूस्थैतिक कक्षा में पहुंचा।

भारत का संचार उपग्रह जी सैट–12, जिसे शुक्रवार 15 जुलाई 2011 को प्रक्षेपित किया गया था, मंगलवार 19 जुलाई 2011 को वृत्ताकार भू–स्थैनिक कक्षा में 36000 किलोमीटर की ऊँचाई पर अपने पूर्व निर्धारित स्थान पर पहुंच गया। इस उपग्रह को भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान PSLV-C17 द्वारा श्रीहरिकोटा अंतरिक्ष स्टेशन से प्रक्षेपित कर "उप तुल्यकालिक" (सबसिंक्रौनस) ट्रांसफर ऑर्विट में स्थापित किया गया था। इस अंतरण कक्षा में इस उपग्रह की पृथ्वी से अधिकतम दूरी 21020 किलोमीटर, अल्पतम कक्षा दूरी 284 किलोमीटर थी। इस उपग्रह का वजन 1410 किलोग्राम है। अभी इस उपग्रह के सभी तंत्र अच्छी तरह काम कर रहे हैं। इस उपग्रह में 12 एक्सटेंडेड सी–बैंड ट्रांसपौंडर लगे हुए हैं। यह उपग्रह कई प्रकार की सेवाओं यथा– दूरस्थ शिक्षा, टेलीमेडिसीन, आपदा प्रबंधन तथा टेलीफोन सेवा इत्यादि के लिए उपयोगी होगा।

4. भारत द्वारा प्रहार मिसाइल का सफल परीक्षण।

भारत द्वारा गुरुवार 21 जुलाई 2011 को जमीन से जमीन पर मार करने वाले 'प्रहार' मिसाइल का पहला सफल परीक्षण किया गया। यह परीक्षण उड़ीसा में चांदीपुर स्थित "इंटीग्रेटेड टेस्ट रेंज" से किया गया। यह परीक्षण सुबह 8 बजकर 20 मिनट पर रोड मोबाइल लांचर से किया गया। यह मोबाइल लांचर एक ट्रक के रूप में था। प्रक्षेपण के 250 सेंकड बाद इस मिसाइल ने 150 किलोमीटर दूर बंगाल की खाड़ी में स्थित अपने लक्ष्य पर आक्रमण किया। यह मिसाइल रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) द्वारा दो वर्ष के अंदर तैयार किया गया है। इस मिसाइल में 200 किलोग्राम तक परंपरागत युद्ध साम्रगी (वार हेड) ले जाने की क्षमता है। यह मिसाइल विशेष तौर पर थल सेना के उपयोग हेतु बनाया गया है। छह प्रहार मिसाइलों को एक ही साथ विभिन्न दिशाओं में प्रक्षेपित किया जा सकता है। इस मिसाइल की लंबाई 7.3 मीटर, व्यास 42 सेंटीमीटर तथा वजन 1.3 मीट्रिक टन है। इसमें गैस ईंधन का उपयोग किया जाता है। यह 150 किलोमीटर दूर अपने लक्ष्य पर मार करने के पहले 35 किलोमीटर की ऊँचाई तक उठता है।

5. सन् 2012 में 4G का उपयोग शुरू हो जाएगा।

तीव्र गति वाले मोबाइल तथा इंटरनेट सर्विस के अगले वर्ष शुरू हो जाने की आशा की जा रही है। इसमें चौथी पीढ़ी की 4G प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाएगा। सन् 2011 के अंत तक भारत में 4G प्रौद्योगिकी से संबंधित लगभग सभी प्रक्रियाएं पूरी कर लिए जाने की आशा है। ऐसी प्रक्रियाओं में शामिल हैं– हैंड सेट, डाटा कार्ड तथा नेटवर्क का निर्माण। "लौंग टर्म इवोल्यूशन (LTE) टेक्नोलौजी" या 4G के उपयोग द्वारा डाटा डाउनलोड का काम काफी तीव्र गति से होने लगेगा। उदाहरणार्थ जिस गाने को डाउनलोड करने में अभी चार मिनट का समय लगता है, 4G के उपयोग द्वारा उसे सिर्फ चार सेंकड में ही डाउनलोड किया जा सकेगा। लौंग टर्म इवोल्यूशन टेक्नोलौजी (LTE) या 4G को शुरू–शुरू में बड़े–बड़े नगरों में लागू किया जाएगा। परंतु आशा है कि दो वर्षों के अंदर ही छोटे–छोटे शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसका उपयोग किया जाने लगेगा। वस्तुतः 4G टेक्नोलौजी एक प्रकार से वायरलेस ब्रौड बैंड का रूप धारण करेगी।

6. ओडिशा में प्लैटिनम की खोज की गई।

भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जी.एस.आई.) द्वारा हाल ही में उड़ीसा के बौला नुआसाही नामक स्थान पर प्लैटिनम समूह के खनिजों की खोज की गई है। प्लैटिनम समूह में कुल छह तत्व होते हैं जिनमें शामिल हैं– (i) प्लैटिनम, (ii) पैलेंडियम, (ii) इरीडियम, (iv) रोडियम, (v) ऑस्मियम तथा (vi) रुथेनियम। जी.एस.आई. को प्लैटिनम की इस खोज में उड़ीसा माइनिंग कॉरपोरेशन का भी सहयोग मिला है। प्लैटिनम धातुओं का महत्व, दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। इन धातुओं का उपयोग आभूषण–निर्माण, औषधि–निर्माण, दूरसंचार उद्योग तथा ईंधन सेल प्रौद्योगिकी में व्यापक स्तर पर किया जाने लगा है। उड़ीसा के बौला नुआसाही क्षेत्र में प्लैटिनम का कुल भंडार लगभग डेढ़ करोड़ टन अनुमानित किया गया है। तमिलनाडु के सीतामपुंडी नामक स्थान पर भी प्लैटिनम समूह के खनिजों के पाए जाने के संकेत मिले हैं।

7. भारतीय वैज्ञानिकों ने दूध की जाँच हेतु नए उपकरण का विकास किया।

राजस्थान में झुनझुनू जिले में स्थित पिलानी नामक स्थान पर केंद्रीय इलेक्ट्रॉनिक अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (CEERI) में कार्यरत कुछ वैज्ञानिकों ने वोल्टमीट्रिक प्रौद्योगिकी पर आधारित एक विशिष्ट प्रकार के उपकरण का विकास किया है जिसके द्वारा दूध की शुद्धता की जाँच आसानी से की जा सकेगी। इस उपकरण का नाम रखा गया है 'इलेक्ट्रॉनिक यंत्र'। इस उपकरण द्वारा सिंथेटिक दूध में यूरिया, डिटर्जेन्ट तथा सोडा इत्यादि की उपस्थिति की जाँच सही ढंग से की जा सकेगी। इस जाँच के लिए सिर्फ दस मिलीग्राम दूध की आवश्यकता पड़ेगी। इस उपकरण द्वारा जाँचने पर दो मिनट में ही पता चल जाता है कि दूध शुद्ध है या सिंथेटिक। जयपुर स्थित राजस्थान इलेक्ट्रॉनिक इंस्ट्रुमेंटेशन लि० द्वारा इस उपकरण की कार्यक्षमता तथा विश्वसनीयता की जांच की गई जिसमें इसे सभी मापदंडों पर संतोषजनक पाया गया।

○○○

13

सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर

जगनारायण

भारतीय मूल के अमेरिकी खगोल वैज्ञानिक सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर ने खगोलिकी के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इस विश्वविख्यात खगोलवैज्ञानिक ने खगोल भौतिकी के अतिरिक्त खगोलीय गणित के क्षेत्र में भी उच्चस्तरीय कार्यों को अंजाम दिया है। इनके शोध–कार्य के रूप में "तारों के ठंडा होकर सिकुड़ने के साथ ऊर्जा के उसके केंद्र में घनीभूत होने की प्रक्रिया" पर किए गए अध्ययन–संबंधी शोधकार्य के लिए 1983 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित गया।

खगोलिकी के क्षेत्र में चंद्रशेखर की सबसे बड़ी सफलता उनके द्वारा प्रतिपादित "चंद्रशेखर लिमिट" नामक सिद्धांत से हुई है। इस सिद्धांत के द्वारा उन्होंने 'श्वेत ड्वार्फ' तारों के समूह की अधिकतम् आयु सीमा के निर्धारण का मार्ग प्रशस्त किया है। इसके अंतर्गत 1.44 सौर समूह या उसके बराबर का तारा न्यूनतम मात्रा को प्राप्त करने के बाद ही अंततः "न्यूट्रॉन स्टार" का रूप धारण कर लेता है या ब्लैक होल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। खगोलिकी के संदर्भ में इसे तारे के जीवन की समाप्ति कहा जाता है। चंद्रशेखर ने ऐसे तारा–समूहों की आयु के निर्धारण का कार्य 1930 में ही उस समय शुरू कर दिया गया था जब वे बी.एस. सी. में मद्रास के प्रेजीडेंसी कालेज में अध्ययन करते थे। जब चंद्रशेखर ने पहली बार इस तरह के तारों की आयु सीमा के विषय में आलेख प्रस्तुत किया तो उस समय वे ट्रिनिटी कॉलेज (कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय) में शोधरत थे। तारों के विषय में इस तरह की आयु सीमा निर्धारण की प्रक्रिया पर चंद्रशेखर 1930 से भारत और कैम्ब्रिज में अपने स्नातकीय अध्ययन के दौरान से ही सक्रिय रूप कार्य करने रहे।

चंद्रशेखर ने इस सिद्धांत को, तारों की आयु सीमा के निर्धारण की प्रक्रिया को, अपनी शोधवृत्ति के दौरान व्यापक रूप से प्रस्तुत किया। उस समय चंद्रशेखर के इस आलेख का बहुचर्चित ब्रिटिश खगोलविद् आर्थर स्टेनली एडिंगटन ने घोर विरोध किया। अपने शोध के विकासक्रम में चंद्रशेखर की परेशानी उस समय बहुत बढ़ गई जब कई अन्य यूरोपीय भौतिकविद् भी उनके विरोध में शामिल हो गए।

विरोधियों की गुटबंदी और परेशान किए जाने से ऊब कर चंद्रशेखर ने कैम्ब्रिज छोड़कर शिकागो को अपने अध्ययन एवं शोध के लिए ज्यादा उपयुक्त माना और ब्रिटेन छोड़कर वहीं पहुँचकर शोध के काम में लग गये। चंद्रशेखर ने अपने शोध को ठोस प्रमाणों और परिणामों के साथ पूरा किया। उन्होंने अपने शोध से प्राप्त परिणामों को व्यवस्थित रूप से संकलित कर एक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया। वास्तव में उपलब्ध तथ्यों को संकलित कर इस प्रकार पुस्तक के रूप में प्रस्तुति के संबंध में उनका विचार था कि "आने वाली पीढ़ी भविष्य में उनकी इस खोज से समुचित लाभ प्राप्त कर सकेगी।" इस प्रकार प्रो. चंद्रशेखर ने इस पुस्तक के माध्यम से हम सभी के सम्मुख खगोल भौतिकी के विभिन्न विषयों पर अपनी महान व्याख्या को प्रस्तुत किया।

प्रो. चंद्रशेखर को 1999 में 'नासा' ने चार वेधशालाओं में से एक में नामांकित किया। नामांकन की यह प्रक्रिया अत्यंत जटिल थी। उनका चयन 61 देशों के 50 राज्यों से आए 6000 प्रतिस्पर्धियों में से कड़ी चयन प्रक्रिया से गुजरने के बाद किया गया था। चंद्रशेखर की एक्स–रे वेधशाला का प्रयोग 23 जुलाई 1999 को छोड़े गए बहुचर्चित कोलंबिया स्पेस शटल में किया गया। चंद्रशेखर शब्द का अर्थ संस्कृत और तमिल दोनों ही प्राचीन भाषाओं में चंद्रमा को धारण करने वाले 'शिव' से ही है। इस प्रकार चन्द्रशेखर "कोलंबिया स्पेस शटल" के माध्यम से भौतिक रूप से भी चंद्रमा के धारक बन गए।

चंद्रशेखर ने बिना इकाई वाली एक संख्या की खोज थी जो चुंबकगतिकी के क्षेत्र में 'चंद्रशेखर संख्या' के नाम से विख्यात हुई। इतना ही नहीं चंद्रशेखर के नाम से 1958 में एक उल्कापिंड का भी नामकरण किया गया।

इस महान वैज्ञानिक का जन्म एक अत्यंत विज्ञान समर्पित और समृद्ध वैज्ञानिक भारतीय परिवार में हुआ था। वे विख्यात भारतीय भौतिकविद् नोबेल पुरस्कार से सम्मानित चंद्रशेखर वेंकट रमन के सगे भतीजे थे। इनका जन्म अविभाजित भारत के लाहौर में 1910 में हुआ था। उनका परिवार एक सात्विक तमिल हिंदू परिवार था। चंद्रशेखर अपने दस भाई–बहनों में तीसरे नंबर पर थे। उनकी माता का नाम सीता था और उनके पिता सुब्रह्मण्यम्, भारतीय लेखा विभाग में सहायक महालेखाकार थे। इनके बड़े भाई सी.वी. रमन ने भी अपने पेशे की शुरूआत इसी विभाग से की थी और उप महालेखाकार रहे। सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर के जन्म के समय उनके पिता लाहौर में उत्तर–पश्चिम रेलवे में नियुक्त थे। इनकी मातृभाषा तमिल थी। चन्द्रशेखर को लोग प्यार से "चंद्रा" नाम से पुकारते थे।

चंद्रा के पिता शौकिया संगीतज्ञ थे। वे दक्षिण भारतीय शैली में वॉयलिन बजाने में सिद्ध थे। वे संगीतशास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने संगीतशास्त्र में कई पुस्तकें लिखी हैं। चंद्रा की माँ बुद्धिजीवी महिला थी। उन्होंने हेनरिक इब्सेन की पुस्तक 'ए डॉल्स हाउस' का तमिल में अनुवाद किया था।

चंद्रा की प्रारंभिक शिक्षा उनके घर पर ही हुई। मिडिल तक की पढ़ाई घर में ही पूरी करने के बाद उन्हें हिंदू हाईस्कूल, ट्रिप्लिकेन, मद्रास में प्रवेश दिलाया गया। जहाँ पर 1922 से 1925 तक वे अध्ययनरत रहे। उसके बाद उनकी आगे की पढ़ाई 1925 से 1930 तक मद्रास के प्रेजीडेंसी कॉलेज में हुई। उन्होंने भौतिकी में बी.एस.सी. आनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। चंद्रशेखर को 1930 में भारत सरकार के द्वारा कैम्ब्रिज में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की गई जहाँ उन्हें ट्रिनिटी कॉलेज में शोध छात्र के रूप में प्रवेश प्राप्त हुआ। वहाँ उन्होंने प्रो. आर. एच. फाउलर के दिशा–निर्देशन में शोध–कार्य आरंभ किया। प्रो. ए. पी. एम. ड्रिक उनके स्नातकीय अध्ययन के मार्ग–निर्देशक रहे। चंद्रा ने एक वर्ष तक कोपनहेक इंस्टीच्यूट फॉर टेओरिटिस्क, फेसिक" में प्रो. भोर के साथ भी काम किया। 1933 के ग्रीष्म ऋतु में उन्होंने अपनी पी.एच.डी. का शोधकार्य पूरा कर लिया। इसी समय वे ट्रिनिटी कालेज की 'प्राइज शोधवृत्ति' के लिए चुन लिए गए। यह शोधवृत्ति 1933 से 1937 तक चार वर्षों के लिए थी। इस समयावधि में उन्होंने सर आर्थर एडिगंटन और प्रो. ई. एम. मेल के साथ मिलकर कार्य किया। 1936 के सितंबर माह में चंद्रशेखर का विवाह श्रीमती ललिता दुराईस्वामी के साथ हो गया। ये मद्रास के प्रेजीडेंसी कालेज में उनकी सहछात्रा थी। ये कालेज में अध्ययन के दौरान उनसे एक वर्ष

पीछे पढ़ रही थी। अपने जीवनी में चंद्रशेखर ने लिखा है "ललिता का धैर्य, समझदारी, सहयोग और उत्साहवर्धन की प्रवृत्ति ही उनके जीवन का केंद्र–बिंदु है।"

जनवरी 1937 में चंद्रशेखर की नियुक्ति अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के पद पर हो गई। वे यहाँ लगातार 1952 तक सैद्धांतिक खगोलिकी के प्रोफेसर के रूप में कार्यरत रहे और 1985 तक इमेरिटस प्रोफेसर रहे।

भारतीय मूल के इस महान् वैज्ञानिक की मृत्यु 84 वर्ष की आयु में 21 अगस्त 1995 में अमेरिका के शिकागो नगर में हुई। इस यशस्वी वैज्ञानिक ने अपने वैज्ञानिक क्रिया–कलापों से समस्त भारतवासियों को गौरवान्वित किया है।

प्रो. सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर को विश्वस्तर के अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। उनमें से कुछ पुरस्कार इस प्रकार हैं :–

1944	'रायल सोसाइटी' का मानद फेलो
1949	'नोरिस रूसेल' प्रवक्ता सम्मान
1952	'बूस' पदक सम्मान
1953	'रायल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी' का स्वर्णपदक पुरस्कार
1967	अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान मेडल सम्मान
1968	'पद्मविभूषण' सम्मान (भारत से)
1971	'हेनरी ड्रेपर' पदक सम्मान
1983	'भौतिकी' का नोबेल पुरस्कार
1984	'रायल सोसाइटी का काप्ले पदक' पुरस्कार
1988	अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की अतिसम्मानित फेलोशिप।

○○○

14

एन्टॉयन लारेन्ट लावोजिए – एक महान रसायनज्ञ

सतीश चंद्र सक्सेना

वैज्ञानिकों की जीवनियां सदैव रोचक और शिक्षाप्रद होती हैं और हमारे युवा वैज्ञानिकों के लिए निश्चित रूप से प्रेरणा का स्रोत होती हैं। कुछ वैज्ञानिक संपन्न परिवार में जन्म लेते हैं, फिर भी वे ऐश आराम की जिंदगी छोड़कर स्वयं को विज्ञान की सेवा में समर्पित कर देते हैं। कुछ वैज्ञानिक आर्थिक कष्टों को सहते हुए संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं और ख्याति प्राप्त करते हैं। यहां एक ऐसे वैज्ञानिक का जीवनवृत्त दर्शाया जा रहा है जिन्होंने उस समय प्रचलित कई सिद्धांतों का खंडन करने का साहस किया। इस कारण वे कई प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों के कोप भाजन भी बने। दुर्भाग्यवश फ्रांसीसी क्रांतिकारी शासन ने उन्हें देशद्रोही घोषित किया और मृत्युदंड दे दिया।

एन्टॉयन लारेन्ट लावोजिए को अधिकतर लोग रसायन का जन्मदाता मानते हैं। वे एक धनवान और संपन्न फ्रांसीसी एडवोकेट के पुत्र थे। उन्होंने विधि (कानून) में स्नातक की उपाधि प्राप्त की और वकालत करने के लिए बाद में अपना नाम भी दर्ज करवाया परंतु उन्होंने कभी वकालत नहीं की। वे रसायन की ओर आकर्षित हुए और अपना समस्त जीवन रासायनिक परिघटनाओं (Chemical Phenomena) के अध्ययन में समर्पित किया। संभवतः वे पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने मात्रात्मक मापनों (quantitative measurements को वरीयता दी। उन्होंने रासायनिक अभिक्रियाओं में अभिकारकों और उत्पादों का द्रव्यमान सावधानीपूर्वक ज्ञात करके द्रव्यमान संरक्षण के नियम (Law of conservation of mass) को परिभाषित किया। उन्होंने दहन की प्रकृति की व्याख्या की और दर्शाया कि वायु में नाइट्रोजन और ऑक्सीजन है। उन्होंने केवेन्डिश द्वारा आविष्कृत 'ज्वलनशील वायु' को हाइड्रोजन तथा प्रीस्टले द्वारा आविष्कृत 'प्राणदायक वायु' को ऑक्सीजन नाम दिया। हाइड्रोजन शब्द का ग्रीक भाषा में शाब्दिक अर्थ 'वाटरफॉर्मर' है। यह हाइड्रोजन, ऑक्सीजन के साथ संयोग करके ओस की बूंदों में परिणत हो जाती है, जिसे प्रीस्टले ने संभवतः जल कहा था। 'ऑक्सीजन' का शाब्दिक अर्थ ग्रीक भाषा में तीक्ष्ण होना है। उसके अनुसार अम्लों का तीक्ष्ण स्वाद ऑक्सीजन के कारण है।

उन्होंने मीट्रिक पद्धति के विकास में योगदान दिया। उन्होंने ही सर्वप्रथम तत्वों की विस्तृत सूची तैयार की और रासायनिक नामकरण पद्धति में सुधार किया। उन्होंने दर्शाया कि पदार्थ के रूप और आकार में परिवर्तन हो सकता है परंतु उसके द्रव्यमान में कोई परिवर्तन नहीं होता।

उन्होंने 1754 से 1761 तक प्रारंभिक शिक्षा मेजादिन कॉलेज में प्राप्त की, जहाँ उन्होंने रसायन, वनस्पति विज्ञान, खगोलिकी और गणित का अध्ययन किया। 1764 में उन्होंने रसायन में पहला प्रकाशन किया। 25 वर्ष की आयु में वे "फ्रेंच एकेडेमी ऑफ साइंसेज" के सदस्य निर्वाचित हुए। 28 वर्ष की आयु में उन्होंने 1771 में 13 वर्षीय मेरी–एनी पीरेट पाडल्जे से विवाह किया। अगले कुछ वर्षों में उनकी पत्नी वैज्ञानिक सहकर्मी सिद्ध हुई। वह अंग्रेजी से फ्रंसीसी भाषा में प्रलेखों का अनुवाद करती थी जिसमें रिचर्ड किदवान के "ऐसे ऑन फ्लोजिस्टन" और जॉसेफ प्रीस्टले के शोधकार्य शामिल हैं। उन्होंने लावोजिए के संस्मरणों को भी संपादित कर

प्रकाशित किया। परंतु यह ज्ञात नहीं है कि उनका कोई अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है या नहीं। वे पार्टियों की भी व्यवस्था करती थीं जिनमें ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक विचारों का आदान–प्रदान और समस्याओं पर चर्चा करते थे।

रसायन में योगदान

लावोजिए ने धातुओं पर जंग लगने की क्रिया में ऑक्सीजन की भूमिका के महत्व को दर्शाया। प्राणी और पादप श्वसन में भी उन्होंने ऑक्सीजन की उपयोगिता दर्शाई। पीरी–सिमन लाप्लास के साथ कार्य करते हुए उन्होंने सिद्ध किया कि श्वसन मूलतः एक मंद दहन अभिक्रिया है जिसमें अंतःश्वसित ऑक्सीजन का प्रयोग होता है। दहन पर लावोजिए की व्याख्या से फ्लोजिस्टन सिद्धांत का खंडन हुआ जिसके अनुसार पदार्थ जलने पर 'फ्लोजिस्टन' नामक पदार्थ उत्पन्न करते हैं।

लावोजिए का अनुसंधान कार्य अंशतः प्रीस्टले की खोजों पर आधारित था जिसका उन्होंने श्रेय लेना चाहा। उन्होंने दर्शाया कि वायु में दहन मुख्यतः ऑक्सीजन के कारण होता है। फ्लोजिस्टन सिद्धांत की असंगतता को प्रीस्टले ने अंतिम समय तक स्वीकार नहीं किया।

वैश्लेषिक रसायन और रासायनिक नामकरण पद्धति

लावोजिए ने जल और वायु के संघटन का अध्ययन किया जो उस समय 'तत्व' माने जाते थे। उन्होंने दर्शाया कि ऑक्सीजन और हाइड्रोजन जल के संघटक हैं और वायु स्वयं कई गैसों का मिश्रण है जिनमें नाइट्रोजन और ऑक्सीजन मुख्य है। उन्होंने फ्रांसीसी रसायनज्ञ क्लाउडे लॉइस बेर्टोले, एन्टॉयन फारकॉय और गायटन डि मोदव्यू के सहयोग से एक क्रमबद्ध रासायनिक नामकरण पद्धति विकसित की जिसका उन्होंने Methode de Nomenclature Chimique (Method of Chemical Nomenclature) में उल्लेख किया है, जो 1787 में प्रकाशित हुई थी। इस पद्धति के विकसित होने से विभिन्न देशों के रसायनज्ञों को अपनी खोजों के संप्रेषण में सुविधा हुई। आज भी इस पद्धति का उपयोग होता है जिसमें सल्फ्यूरिक अम्ल, सल्फेट और सल्फाइट आदि नाम शामिल हैं।

लावोजिए की 1789 में प्रकाशित पुस्तक "Taite Elementaire de Chimic" (Elementary Treatise on Chemistry) आधुनिक रसायन की प्रथम पाठ्य पुस्तक मानी जाती है। इस पुस्तक में रसायन के नए सिद्धांतों को समेकित रूप में प्रस्तुत किया गया है। तत्व को ऐसा पदार्थ माना गया है जिसे रासायनिक विश्लेषण की किसी भी ज्ञात विधि द्वारा भंजित नहीं किया जा सकता। इस पुस्तक में तत्वों से यौगिकों के निर्माण का लावोजिए सिद्धांत भी प्रतिपादित किया गया है। उस समय के कुछ अग्रणी रसायनज्ञ लावोजिए के विचारों से सहमत नहीं थे, परंतु पुस्तक के फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशन के एक वर्ष के अंदर पुस्तक को अंग्रेजी में अनुवाद के योग्य समझा गया और अगली पीढ़ी ने इस पुस्तक को मान्यता दी।

लावोजिए ने प्लास के साथ भौतिक रसायन और ऊष्मागतिकी में भी अनुसंधान कार्य किया। लावोजिए ने संघटन और रासायनिक परिवर्तनों की मूल धारणा में योगदान दिया। उसका विश्वास था कि रासायनिक परिवर्तन में मूलक, एकल समूह की भांति कार्य करते हैं और अभिक्रियाओं में ऑक्सीजन के साथ संयोग करते हैं। उसने दर्शाया है कि हीरा वास्तव में कार्बन का ही एक क्रिस्टलीय रूप है और उसने इस प्रकार रासायनिक तत्वों में अपररूपता (allotropy) की संभावना का समावेश किया। वे मूलतः सिद्धांतवादी थे और प्रचलित उपकरणों का प्रयोग कर उन्होंने ब्लैक, प्रीस्टले और कैबेन्डिश के अधूरे कार्यों को पूरा किया और उनके प्रयोगों की सही व्याख्या प्रस्तुत की। समग्र रूप से उनका योगदान अठारहवीं शताब्दी में रसायन को भौतिकी और गणित के स्तर तक पहुंचाने के लिए पर्याप्त था। लावोजिए के पुराने प्रलेख बहुत सुंदर हैं जिनमें उन्होंने अपने प्रयोगों को मनोरम रेखांकनों के माध्यम से चित्रित किया है। उन्होंने भार और माप की मीट्रिक प्रणाली विकसित की जिसका एकरूपता की दृष्टि से समग्र फ्रांस में प्रयोग हुआ।

लावोजिए और राजनीति

उन्होंने राजनीति में रुचि लेना प्रारंभ किया। फ्रांसीसी क्रांतिकारियों के आतंकी शासन काल में उन्हें देशद्रोही घोषित किया गया। उन पर मुकदमा चलाया गया और दोषी करार दिया गया और 50 वर्ष की अल्पायु में 8 मई 1794 को पेरिस में मृत्युदंड दिया गया। उनके जीवनदान के लिए कई वैज्ञानिकों ने अनुरोध किया ताकि वे अपने प्रयोग जारी रख सके, किंतु जज ने अनुरोध ठुकराते हुए निर्णय दिया, "The republic needs neither scientists nor chemists; the course of the justice can not be delayed". विज्ञान में लावोजिए के महत्व पर टिप्पणी करते हुए लाग्रांज ने कहा, "लावोजिए का सर कलम करने में शायद एक मिनट ही लगा हो परंतु फ्रांस में ऐसा वैज्ञानिक जन्म लेने में सौ वर्ष लगेंगे।" उसके मृत्युदंड पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्लास ने भी वैसे ही उद्गार प्रकट किए और कहा कि लावोजिए जैसा प्रतिभावान वैज्ञानिक हजारों साल में जन्म लेता है।

मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद फ्रांसीसी सरकार ने लावोजिए पर लगाए गए सभी आरोप वापस ले लिए। उनकी निजी संपत्ति उसकी विधवा पत्नी को सौंप दी गई और साथ में उसकी पत्नी के लिए संक्षिप्त नोट था जिसमें लिखा था "To the widow of Lavoisier, who was falsely convicted".

उनकी मृत्यु के लगभग 100 वर्ष बाद पेरिस में उनकी एक प्रतिमा स्थापित की गई। बाद में पता चला कि शिल्पकार ने प्रतिमा में लावोजिए का सर न बनाकर "एकेडेमी ऑफ साइंसेज" के सेक्रेटरी मारक्विस डि कान्डेरेक्ट के सिर की नकल की है। कहा जाता है कि धन के अभाव में प्रतिमा में सुधार नहीं किया जा सका। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यह बुत ध्वस्त हो गया और फिर स्थापित नहीं हुआ। हालांकि, पेरिस के एक मुख्य हाईस्कूल को और एक सड़क को लावोजिए नाम दिया गया। होटल डि विले, पेरिस में लावोजिए की प्रतिमा अभी भी देखी जा सकती है।

○○○

लेखक-परिचय

1. डॉ. दिनेश मणि
35/3, जवाहर लाल नेहरू रोड,
जार्ज टाउन, इलाहाबाद–2, (उ.प्र.)

2. डा. राजू लाल भारद्वाज
उद्यान विशेषज्ञ
कृषि विज्ञान केंद्र, सिरोही (राजस्थान)

3. श्री श्याम सुंदर बैरवा
ऐसिस्टैंट प्रोफेसर
एम.एल.भी. टैक्सटाईल इंजीनियरिंग कॉलेज
भीलवाड़ा (राजस्थान)

4. डा. शंकर लाल एवं धर्मेंद्र कुमार
एन.एस.सी., बीज भवन,
पूसा परिसर, नई दिल्ली–110012

5. डॉ. नवीन कुमार बोहरा
प्लॉट नं. 389, गली नं.–10,
मिल्कमैन कॉलोनी, पाल रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

6. डॉ सोनल अग्रवाल
3, ज्ञान लोक मयूर विहार,
E शास्त्री नगर, मेरठ– 250004 (उ.प्र.)

7. डॉ. जे. एल. अग्रवाल
3, ज्ञान लोक, मयूर विहार
E शास्त्री नगर, मेरठ (उ.प्र.)
पिनकोड – 250004

8. डॉ. ए. के. चतुर्वेदी
26–कावेरी एन्क्लेव, फेज-II
निकट स्वर्ण जयंती नगर
रामघाट रोड, अलीगढ़–202001 (उ. प्र.)

9. मोहन सिंह जांगड़ा
बागवानी अनुसंधान केंद्र
सेऊबाग, कुल्लू–175138 (हि.प्र.)

10. डॉ. आर. एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राव
टिशू कल्चर लैब, कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग
सरदार वल्लभभाई पटेल,
कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
मेरठ – 250110

11. डॉ. विजय कुमार उपाध्याय
कृष्णा एन्क्लेव, राजेंद्र नगर, पो०–जमगोड़िया
वाया–जोधाडीह, चास, जिला–बोकरो,
झारखंड, पिनकोड–827013

12. जगनारायण
ईशान स्टूडियो, श्री विश्वनाथ मंदिर,
काशी हिंदू विश्व विद्यालय
वाराणसी–221005 (उ.प्र.)

14. सतीश चंद्र सक्सेना
(पूर्व उपनिदेशक),
बी. बी. 35 एफ, जनकपुरी
नई दिल्ली–110058

आयोग के प्रकाशन

शब्दसंग्रह, शब्दावलियां

क. बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह

विज्ञान खंड 1, 2 (संशोधित संस्करण)	174.00	इंजीनियरी (सिविल, विदयुत्, यांत्रिक)	340.00
मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड (1, 2)	292.00	पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00	प्राणि विज्ञान	311.00
आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50	मुद्रण इंजीनियरी	48.00

ख. विषयवार शब्दावलियाँ (अंग्रेजी-हिंदी)

भौतिकी		**वाणिज्य**	
अर्धचालक शब्दावली	140.00	पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली	79.00
गृहविज्ञान		वाणिज्य शब्दावली	259.00
गृहविज्ञान शब्द-संग्रह	60.00	**कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी**	
रेशम शब्द-संग्रह	50.00	कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00
वानिकी तथा जीव विज्ञान		**इंजीनियरी**	
वानिकी शब्द-संग्रह	447.00	इलेक्ट्रॉनिक शब्दावली	349.00
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00	**भूगोल**	
कोशिका तथा अणु जैविकी शब्द-संग्रह	348.00	जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
प्रशासन		प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	20.00	**भू-विज्ञान**	
प्रशासनिक शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	20.00	अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
रसायन		आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
रसायन शब्द संग्रह	592.00	सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली	55.00	भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00

भू-भौतिकी शब्दावली	67.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	32.00
जीवाश्म विज्ञान शब्दावली	129.00
शैल विज्ञान शब्दावली	82.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह	15.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	12.25
प्रसारण तकनीकी शब्दावली	310.00
गणित	
गणित शब्द-संग्रह	143.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
औषधि प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली	273.00
राजनीति	
संसदीय कार्य शब्दावली	130.00
गुणता नियंत्रण	
गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	38.00

ग. विषयवार पारिभाषा कोष (अंग्रेजी-हिंदी)

नृविज्ञान	
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
पुरातत्व विज्ञान	
पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला एवं संगीत	
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	28.55
जैविकी (जीवविज्ञान)	
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
वनस्पति विज्ञान	
वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश	80.50
रसायन	
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
वाणिज्य	
वाणिज्य परिभाषा कोश	24.70
अर्थशास्त्र	
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
इंजीनियरी	
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	61.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश-I	84.00
भूगोल	
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
भू-विज्ञान परिभाषा कोश	63.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
शैल विज्ञान परिभाषा कोश	153.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
कृषि	
कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश	75.00

सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश	77.00
विधि	
अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
प्रबंध विज्ञान	
प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश	170.00
गणित	
गणित परिभाषा कोश	203.00
दर्शन शास्त्र	
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
भारतीय दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश खंड 3	136.00
भौतिकी	
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
प्राणि विज्ञान	
प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00

घ. क्षेत्रीय भाषा शब्दावलियां

आयुर्विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	450.00
राजनीति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	186.00
इतिहास शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	404.00
गणित शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	189.00
प्राणिविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	205.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	162.00
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	108.00
अर्थशास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	183.00
रसायन शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
वनस्पति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	208.00
शिक्षा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	390.00
दर्शन शास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	61.00
भौतिक विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	203.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	515.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	185.00
भू-विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	306.00
शिक्षा शब्द संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	97.00
समाजशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	118.00
राजनीतिक विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	211.00
पुरातत्व विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	157.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	35.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	720.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	652.00
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	417.00

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क :	**भारतीय मुद्रा**	**विदेशी मुद्रा**	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करे:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ..... विभाग का/छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड्ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, शहाजहां रोड धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

MGIPRRND–2248 HRD/2013–500 Copies.

© भारत सरकार

प्रकाशन नियंत्रक
अप्रैल–जून 2012

पी.सी.एस.टी.टी. 81 (4-6)/2012
500

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2013